वैदिकधर्म

मार्च १९६४

पूज्य श्री मौंढे महाराज

५० नये पैसे

वर्ष ४५

वैदिक धर्म

अंक ३

क्रमांक १८२ : मार्च १९६४

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

१ सौख्यदाता अग्नि (वैदिक प्रार्थना) ६७

२ हमारा नवीन साहस ६८

३ आहारका असर आचारपर
श्री सर्वजित गौड ६९

४ आर्यसमाज विचार करे स्वामी ब्रह्ममुनि ७१

५ समालोचना ७२

६ आर्य कौन, अनार्य कौन ! एक विचार
श्री भगवानराव आर्य भोसीकर ७३

७ सेवाका महत्त्व समझिये
श्री शिवनारायण सक्सेना ७६

८ महामहोपाध्याय रूसमें श्री श्री. रा. टिकेकर ७९

९ वैदिक ऋचाओंकी ओजस्विता
श्री वेदव्रत शर्मा ८१

१० पुरुष प्रजापति श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल ८९

११ स्वाध्याय श्री विश्वामित्र वर्मा ९७

१२ विरोध और प्रतिकूलताका स्थान
श्री माताजी १०१

"वैदिक धर्म"

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५०

डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल,
पो.- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आर्य धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३ सामवेद संहिता	२)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	२)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये देवता-मंत्र-संग्रह मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता- (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम-मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत संहिता- (द्वितीय भाग)

अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता- (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)
(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)		
१ मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि ,, ,,	२)	.२५
३ शुनःशेप ,, ,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप ,, ,,	१)	.२५
५ काण्व ,, ,,	२)	.२५
६ सव्य ,, ,,	१)	.२५
७ नोधा ,, ,,	१)	.२५
८ पराशर ,, ,,	१)	.२५
९ गोतम ,, ,,	२)	.३७
१० कुत्स ,, ,,	२)	.३७
११ त्रित ,, ,,	१.५०	.३१
१२ संवनन ,, ,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ ,, ,,	.५०	.१२
१४ नारायण ,, ,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति ,, ,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी ,, ,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा ,, ,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि ,, ,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ ,, ,,	७)	१)
२० भरद्वाज ,, ,,	७)	१.५०

मन्त्री— 'स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' [जि. सूरत]

वैदिकधर्म

सौख्यदाता अग्नि

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो
वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमे
अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥

ऋ. १।९४।१३

हे अग्निदेव ! तू (देवानां देवः असि) तेजस्वी दीखनेवालोंमें भी अत्यन्त तेजस्वी है। (अद्भुतः मित्रः) तू विलक्षण मित्र है। (चारुः अध्वरे) सुन्दर दीखनेवाला तू हिंसारहित यज्ञमें (वसूनां वसुः असि) निवास करानेवालोंको बैठाता है। (अग्ने) हे सर्वत्र व्यापक अग्ने ! (तव सप्रथस्तमे शर्मन् स्याम) तेरे आश्रयमें हम सुखी हों और (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रतामें हम कभी भी दुःखी न हों।

यह तेजस्वी और नेता प्रभु सबसे अधिक तेजस्वी है। इसके तेजकी कल्पना भी कोई नहीं कर सकता। सूर्य, चंद्र, अग्नि और तारे भी इसीके तेजसे प्रकाशित होते हैं। ऐसे तेजस्वी प्रभुके आश्रयमें रहनेवाला कभी भी दु.खी नहीं होता।

हमारा नवीन साहस

" वैदिक साहित्यके प्रसारार्थ जिन्होंने अपना जीवन खपा दिया, ऐसे आदरणीय वेदमूर्ति पं. श्री. दा. सातवलेकर ९८ वर्षके होते हुए भी एक नया साहस कर रहे हैं। "

भारतीय भाषाओंकी जननी " संस्कृतभाषा " में " अमृतलता " के नामसे एक त्रैमासिक पत्रिका वे शुरू करने जा रहे हैं।

नवशक्ति (मराठी दैनिक) बम्बई
१९-२-६४

संस्कृतभाषा विश्वकी समस्त भाषाओंकी जननी है, उसकी उन्नति एवं सर्वत्र प्रसार करनेके लिए हम सतत प्रयत्न कर रहे हैं और इस हमारे प्रयत्नमें लोगोंकी भरपूर सहायता भी मिलती है।

इस भाषाका और अधिक प्रसार हो, इसलिए हम संस्कृतमें " अमृतलता " के नामसे एक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित करने जा रहे हैं। इसमें पाठकोंको महान्-महान् लेखकोंकी रचनायें पढनेको मिलेंगी। कतिपय लेखकोंके नाम इस प्रकार हैं—

डॉ. मंगलदेव शास्त्री, डी. फिल्., भूतपूर्व उपकुलपति, वाराणसेय संस्कृत-विश्वविद्यालय
डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, पी एच्. डी., डी. लिट्.
डॉ. सुधीरकुमार गुप्त, पी एच्. डी.
प्रा. श्री. भा. वर्णेकर, एम्. ए.
श्री सत्यपाल शर्मा, एम्. ए., शास्त्री, सा. रत्न
श्री श्री. भि. वेलणकर, एम्. ए.
श्री वि. के. छत्रे
श्री गणपति शुक्ल, एम्. ए. आचार्य, सा. रत्न
और भी लेखक

पत्रिकाकी कुछ विशेषतायें

(१) भाषा सरल व सुबोध
(२) दीर्घसंधि व समासरहित
(३) ज्ञान और मनोरंजन
(४) आधुनिक लेखन-पद्धति
(५) प्रारंभसे संस्कृत सीखनेवालोंके लिए सरल पाठ

इन विशेषताओंसे युक्त होते हुए भी इस पत्रिकाका वा. मू. केवल ७) है; आज ही वार्षिक मूल्य भेजकर ग्राहक बनिए।

मन्त्री,
स्वाध्याय-मण्डल,
पोस्ट- ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ', पारडी [जि. सूरत]

आहारका असर आचारपर

(लेखक— श्री सर्वजित गौड कुल्लू)

इसमें सन्देह नहीं कि जैसा अन्न वैसा ही मन होता है। मनसे विचार होता है। जैसा विचार होता है, वैसा ही आचार व्यवहार होता है।

सात्विक भोजनसे सात्विक आचार और राजसिक तथा तामसिक भोजनसे वैसा ही आचार होता है।

सात्विक मनुष्य सदाचारी धर्मपरायण होता है।

रजोगुणी तथा तमोगुणी मनुष्य स्वार्थी, क्रोधी, क्रूर, अन्यायी, दुराचारी तथा मूर्ख भी होता है।

धार्मिक शिक्षाका प्रभाव मनुष्यके जीवनपर बड़ा गहरा होता है। परन्तु सोहबतका भी असर मनुष्यको बदल देता है। फारसीका मकूला है—

सोहबते सालह तुरा सालह कुनद
सोहबते तालेह तुरा तालेह कुनद

नेक सोहबत नेक बनाती है और बुरी बुरा बनाती है।

जब बुरा स्वार्थी मनुष्य कुछ करना चाहता है, तो बहाना तलाश करता है। फारसीका मकूला है कि—

खूए बद रा भाना बिसयार। अर्थात् दुराचारी बदनीयत आदमीके लिये बहुत बहाने होते हैं।

जब भारतमें वैदिक-धर्म शिक्षाका बोलबाला था, तो वह संसारका भला करनेमें समर्थ था। सब देशोंसे मनुष्य यहां आकर शिक्षा प्राप्त करके अपने देशमें शान्तिके लिये सदाचारका प्रचार करते थे, जिसका फारमूला मनुमहाराजने धर्मके इन लक्षणोंमें बताया है और यही यमनियम हैं—

यम	नियम
१ अहिंसा	६ शौच
२ सत्य	७ संतोष
३ अस्तेय	८ तप
४ ब्रह्मचर्य	९ स्वध्याय
५ अपरिग्रह	१० प्रणिधान

इस समय आर्य जाति भारतमें वैदिक सिद्धान्तको भूल कर अनेक मतमतांतरोंमें उलझकर एकताको खो बैठी है!!! परन्तु फिर भी हर्षकी एक बात है कि मूल सबका एक वैदिक धर्म है इस बातको कभी न कभी यह समझकर आपसका भेदभाव भूलकर फिर एक रूप धारण करेंगे ऐसा निश्चय है!!

संसारमें बड़े बड़े मत तथा उनके बड़े बड़े गुण जो मनुष्य पर अपना प्रभाव डालते हैं, निम्न लिखित हैं—

मत	गुण
१ बुद्ध	अहिंसा।
२ जैन	अहिंसा।
३ सिख	एकता-भक्ति।
४ क्रिश्चयनिटी	सेवा-भाव।
५ इस्लाम	भोग प्रधानताबाके मतका प्रसार तलवारसे।
६ यहूदी	इसका भारत पर प्रभाव नहीं है।
७ पारसी	अग्निपूजक।

जहां तक मेरा अपना विचार है यह व्यक्तिविशेषके मत होनेसे समस्त मानव जातिके मानने योग्य नहीं हैं। यह समयकी अनुकूलताके अनुसार उपयोगी हो सकते हैं।

इनमें इस्लाम सभ्यता तो ऐसी है कि यह भोग भोगनेके उसूल पर निर्धारित है। छूतछात इखलाक और इसका पक्षपात मनुष्यको कभी भी उन्नत नहीं कर सकता और नहीं यह मानव धर्मके अन्तर्गत है। जो मत मांस अण्डाका

प्रचार करता है वह मनुष्यको आध्यात्मिक रूपसे ऊंचा नहीं कर सकता। वह सदाचारकी जगह भ्रष्टाचार, दुराचार, व्यभिचार और अत्याचार ही फैलावेगा।

भारत ऐसे मतोंकी संगतसे इस समय, दूध, घी, चावल गेहूं आदिकी जगह अब हमें अण्डा, मुर्गी, मांस खाना सिखा रहा है। और भ्रष्टाचारको रोकनेका यत्न भी कर रहा है- साथ ही इस समय शोर मचा रहा है की अबादी बढ रही है। मर्दोंको खसी किया जाए, स्त्रियोंको सन्तान पैदा करनेके नाकाबिल बनाया जाए। यह उलटी मत पश्चिमका है।

भोगको कायम रखकर रोगका इलाज नहीं हो सकता। रोगका कारण ढूंढ कर उसका इलाज इलाज है।

मांस, अण्डा, मुरगी, प्याज, लहसन, शराब, डालडा, वनस्पती आदिको बन्द किया जाये। गौपालन पर जोर दिया जावे। दूध, घी, मक्खन, चावल, गन्दुम, गुड, खाण्ड आदि सस्ते किये जायें। फैशनपरस्तीको रोका जाये, सिनेमा आदि धार्मिक प्रचारके लिये बरते जायें। इसमें भक्तिरस, वीररसके दृश्य दिखाए जाएं। दमयन्ती, सावित्री, सत्यवान आदिके चित्र तथा चरित्र बताए जायें।

देखिये, इस समय सर्वमांसभक्षी चीन आबादीमें सबसे बढा हुआ बुद्धधर्मी देश है। दूसरा दर्जा भारतका है यहां भी बहुसंख्या मांस खोरोंकी हो रही है। ईसाइयों मुसल्मानोंमें कोई कमी नहीं है।

भारत संभल जा। विदेशियोंके पीछे मत जा। वैद्य, डाक्टर तेरे घरमें हैं। दवाई तेरे पास है। परमात्माका ज्ञान तेरे पास है। अपने बच्चोंको वर्ण, आश्रमकी शिक्षा पर चला, मानव धर्मके यम नियम ही तो इन रोगोंका इलाज है।

दूसरोंके पीछे मत चल। बहानासाजीसे बाज आ। अपना जीवन 'मानव धर्म' के दस यम नियमका पालन करनेमें लगा। इसीमें तेरा भला है और सबका भला है।

स्कूलोंमें सात्विक भोजन, सादा पहिराव और ब्रह्मचर्यके पालनकी शिक्षा पर जोर दिया जाए। तभी हमारी जाति निरोग तथा बलवान् होकर दीर्घ आयुको प्राप्त होकर उन्नत होगी।

प्राचीन भारतके प्रति चीनके यात्री फाहीयान और ह्युनसांग अपने सफरनामामें लिखते हैं कि यहांके लोग सत्य-वक्ता हैं। मांस, अण्डा, प्याज, लहसन, शराब नहीं इस-माल करते। यहां चोर तथा डाकू नहीं हैं। घरोंमें ताला नहीं लगाते। यही मेगेस्थनीज भी लिखता है। तभी तो यह देश वन्दनीय था।

आज आप देख रहे हैं क्या हो रहा है!!!

आर्यसमाज विचार करे

[लेखक— श्री स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड, गुरुकुल जज्झर, जज्झर (जि. रोतहक)]

श्रीयुत् मान्यवर सम्पादकजी ' वैदिक धर्म " ।

सप्रेम नमस्ते ।

दिसम्बरमासके ' वैदिकधर्म ' में आपने ' आर्यसमाजसे एक और रत्न छिन गया ' शीर्षकसे कुछ अपने विचार प्रकट किए, इससे आपका आर्यसमाजके प्रति हित झलकता है साथमें मेरे प्रति सहानुभूति भी । मुझे आपने आर्यसमाज का रत्न कह दिया, यह तो आपकी दृष्टि है । परन्तु मैं आर्य-समाजका रत्न नहीं हूं, अन्यथा आर्यसमाज व आर्यसभाएं मेरा इतना अपमान क्यों करती ? वस्तुतः मैं तो आर्यसमाज में रत्न नहीं, किन्तु सोपान या द्वारमें दबा पादाक्रान्त होनेवाला पत्थर हूं, घटनाओंने या आर्यसमाज और सभाओंके व्यवहारने यह सिद्ध कर दिया है ।

आपने लिखा कि ऐसे अवसर पर दोही मार्ग हैं या तो इन दुर्व्यवहारकर्ताओंका मुखमर्दन कर दे या अलग बैठ जावे । सो मैं अलग होकर बैठ गया । मुखमर्दनका मार्ग अपनाना मुझे अभीष्ट न था, यदि ऐसा अभीष्ट होता तो मैं ' आर्यसमाज विनयनगर, नई दिल्ली ' पर मानहानिका अभियोग शासन (कोर्ट) में चलाकर दण्डित करा सकता था । मुझे तो शासन कोर्टमें जाना अभीष्ट नहीं था, हाँ, आर्यसमाजके कोर्ट प्रान्तीय सभा और सार्वदेशिक सभामें मैंने अपना अभियोग रखा और न्याय चाहा, पर मुझे न्याय न मिला मेरी कुछ न सुनी । आश्चर्य है सार्वदेशिकसभाके प्रधान आदि आर्यसमाजोंके पारस्परिक या दल बन्दियोंके न्याय करते फिरते हैं, परन्तु पढे लिखे और निःस्वार्थसेवा करनेवाले संन्यासीके न्याय करनेमें इनकी लेखनी रुक जाती है या उठती नहीं, क्यों ? होसकता है इसलिये कि अब यह बूढा होरहा है; सेवा तो कर ही चुका, आगे सेवा करनेमें असमर्थ होगया होने दो अपमानित, आर्यसमाजमें और विद्वानोंकी कमी नहीं, इस बूढे बैलको क्यों स्थान और चारा दें, या यह हमारी किसी सभाका सदस्य नहीं, इससे किसी वोटका लाभ भी नहीं, फिर क्या मरने दो ।

सम्पादकजी ! विदित हो, मैंने जो आर्यसमाजकी सेवा की वह किसी प्रतीकारमें नहीं कि मेरे ऊपर आर्यसमाजका ऋण था या है, मैं आर्यसमाजकी संस्थाओंमें नहीं पढा, न उनका खाया, कुछ काल काशीमें स्वतन्त्र पढा और एक एक रोटीकी भिक्षा मांगकर पढा, पढकर कार्य भी कहूं आर्य-संस्थाओंमें प्रायः अवैतनिक किया । जो कार्य मैंने किया, सभाएं लाख रुपये खर्च करतीं तो भी स्यात् होपाता, मैं तो अपने ऊपर ऋषिदयानन्दका ऋण मानता हूं । हिन्दी शिक्षणसे लेकर अबतक ज्ञानमें प्र. कृष्णदत्तके पक्षपातियोंको मेरा चैलेंज है वे लाखरुपये भी खर्च करके मेरी ' भ्रमनिवारण ' पुस्तक-का उत्तर नहीं दे सकते, गालियां देना, अपमान करना भय दिखलाना तो उत्तर नहीं । परमात्मा आर्यसमाज और आर्यसमाजोंको सद्बुद्धि न्यायबुद्धि दें ।

卐 卐 卐

स मा लो च ना

मुकुन्दलीलामृतनाटकम्—

लेखक एवं प्रकाशक— श्री पं. विश्वेश्वर दयालु वैद्यराज, बराळोकपुर, जि. इटावा (यू. पी., मू. २)

श्रीकृष्णकी बाललीलायें कई कवियों एवं नाटककारोंके लिए प्रेरणास्रोत बनी हैं। प्रायः सभी भारतीय भाषाओंमें श्रीकृष्णकी लीलाओंका बडा आकर्षक वर्णन है।

प्रस्तुत नाटक भी इन्हीं लीलाओंका बडे आकर्षक ढंगसे वर्णन करता है। बडे सुन्दर परन्तु प्रौढ शब्दोंमें नाटककारने श्रीकृष्णकी बाललीलाओंको पाठकोंके सामने प्रस्तुत किया है। यों तो पुस्तकके बाह्य कलेवरको देखकर पाठकके मनमें इस नाटकके प्रति उदासीनता उत्पन्न होगी, पर जब अन्दरके विषयको पढेगा, तो उसे इसमें रस आने लगेगा। वर्णनका ढंग आकर्षक है।

टाइप, मुद्रण एवं प्रूफ सम्बन्धी अशुद्धियां हैं अवश्य। अतः यदि दूसरे संस्करणमें इन पर ध्यान दिया जाए, तो पुस्तक सर्वांग सुन्दर बन सकती है।

धर्म क्या कहता है ? (१२ भागोंमें)

लेखक— श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, प्रकाशक— सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी। मूल्य ५० न. पै. प्रत्येक भाग।

प्रत्येक धर्ममें अच्छी बातें और अच्छे उपदेश होते हैं, जो मनुष्यको उन्नत करते हैं। धार्मिक कलह या साम्प्रदायिकता तभी फैलती है, जब लोग धर्मोंकी समानताकी उपेक्षा कर उनकी विषमता पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। हर धर्मका यही उद्देश्य रहा है कि मनुष्य श्रेष्ठ कैसे बन सकता है। आवश्यकता केवल इस बातकी है कि मनुष्य हंसकी नीरक्षीर-विवेककी दृष्टि अपना कर उन धर्मोंका आदर करना सीखे। इस कार्यको श्री भट्टजीने बडी ही सुचारुतासे निभाया है।

वैदिक-जैन-बौद्ध-पारसी-यहूदी-कन्फ्यूशियन-ईसाई-इस्लाम-सिक्ख इन धर्मोंके चुने हुए उपदेशोंका संग्रह लेखकने ' धर्म क्या कहता है ? ' पुस्तकके १२ भागोंमें किया। इनमें इन्होंने सब धर्मोंकी साम्यता दिखानेका सफल प्रयास किया है। प्रत्येक भागमें एक एक धर्मका स्वरूप सरल भाषामें दिया है। चित्रों सहित ये पुस्तकें ज्ञान और मनोरंजन दोनोंको देनेवाली हैं।

पुस्तककी छपाई, मुखपृष्ठ, कागज सभी उत्तम कोटिके हैं।

पुस्तकें बहुत सुन्दर हैं। ❀ ❀ ❀

आर्य कौन, अनार्य कौन ?

एक विचार....

(लेखक— श्री भगवानराव आर्य भोसीकर, आर्यनिवास कन्धार (नान्देड) महाराष्ट्र)

★

वैदिक धर्मके गत अंकोंमें आर्य और अनार्य इस विषय पर दो लेखकोंने अपने विचार प्रकट किये। यह विषय अनेक मासिकों और दैनिकपत्रोंमें चर्चाका शीर्षक बना रहा और इसपर अनेक लेखकोंने अपनी कलम उठायी। वही विषय वैदिक धर्मके पाठकोंके समक्ष विचारार्थ आया है। इस सम्बन्धमें मैं अपने विचार पाठकोंके विचारार्थ प्रस्तुत करना चाहता हूं।

आर्य इस शब्दका अर्थ होता है ' श्रेष्ठ ', जो भी श्रेष्ठ हो उसे हम आर्य कह सकते हैं। परन्तु श्रेष्ठ यह शब्द प्रत्यक्ष किस व्यक्तिके लिये प्रयुक्त होसकता है, यह केवल इसी अर्थसे स्पष्ट नहीं होसकता। अनेक विद्वानोंने इसको अधिक स्पष्ट करते हुये लिखा है, जो सुसंस्कृत, ज्ञानी, सुयोग्य, सम्माननीय आदिकी व्याख्याओंसे विभूषित होनेके योग्य हो वह आर्य है। अर्थ यही कि ऐसा व्यक्ति ही आर्य कहला सकता है अथवा ऐसे व्यक्तिको ही आर्य कह सकते हैं जो एतद् गुणोंके योग्य हो। इसके विपरीत जो असंस्कृत, अज्ञानी, अयोग्य, असम्माननीय हो, वह अनार्य है।

ऊपर बतायी व्याख्या स्पष्ट है। आर्योचित गुण कर्म और स्वभाव युक्त व्यक्ति आर्य है और इसके विपरीत गुण कर्म और स्वभाव युक्त व्यक्ति अनार्य है। यदि यह मान लिया गया तो ' आर्यका पुत्र आर्य ही और अनार्यका पुत्र अनार्य ही होना चाहिये। ' ऐसा विधान दुःसाहस पूर्ण ही होगा। क्योंकि यह सर्व विदित है कि एक व्यक्ति के गुण कर्म स्वभाव दूसरे व्यक्तिके गुण कर्म स्वभावसे पृथक रहते हैं, चाहे वह व्यक्ति किसीका मित्र हो, शत्रु हो, पिता हो, पुत्र हो या और कोई। अतः यह आवश्यक नहीं कि आर्यका पुत्र आर्य ही होवे और अनार्यका पुत्र अनार्य ही होवे। इसपर भी यह माननेमें कोई भूल नहीं कर सकता कि आर्यके घर जन्म लेनेवाली सन्तानको अपने व्यक्तित्वमें आर्यत्व ढालनेकी अनायास परिस्थिति प्राप्त होती है। तथैवच अनार्यको अनार्यत्वमें ढलनेकी परिस्थिति अनायास प्राप्त रहती है। और यही कारण होता है कि सन्तानमें आर्यत्व अथवा अनार्यत्वकी उपज होती है और संसार आर्य अनार्य इस संज्ञासे या अन्य संज्ञासे सम्बोधन करता है।

मैं इससे स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि ' आर्य ' यह कोई वंश नहीं है और नाहि यह कोई जाति है। जाति या वंशको यदि आर्य यह संज्ञा प्रयुक्त होती है तो अर्थ यही हुआ कि इस जातिका दुराचारी, व्यभिचारी मिथ्याचारी भी आर्य है, सम्माननीय है, सुयोग्य है, ज्ञानी है और सुसंस्कृत है। और यदि यह ठीक है तो फिर आर्य इस शब्दका पावित्र्य ही नष्ट होजाता है और फिर आर्य कौन ? इसकी व्याख्या करते बैठनेकी भी आवश्यकता नहीं। क्योंकि आर्य तो एक वंश है, जाति है। एक वंश अथवा जातिको आर्य कहते हैं यही व्याख्या पर्याप्त हुई। अतः पाठकोंको मेरा हेतु स्पष्ट हुआ होगा कि मैं इस द्वारा सिद्ध कर देना चाहता हूं कि आर्य यह व्यक्तिवाचक शब्द है जातिवाचक या वंशवाचक शब्द नहीं।

इतिहासकार इससे विपरीत हैं। वे आर्य इस शब्दको जातिवाचक, वंशवाचक बताते हैं और उनकी व्याख्या भी कुछ पृथक् ही है। उनकी व्याख्याके अनुसार आर्य वह है जो गोरा हो, ऊंचा हो, नीली आंखोंवाला हो, नाक ऊंची

हो, माथा ऊंचा हो आदि आदि। और यह बातें किसी शुद्ध वंश अथवा जातिमें ही होसकती हैं और रह सकती हैं। अन्य जाति अथवा वंशसे सम्बन्ध आ जाने पर अनार्य तत्व इस जातिमें भी आ जाते हैं और मिश्रजाति पैदा हो जाती है। यह मिश्रजाति व्याख्याके विपरीत जानेसे अनार्य हुई और इस प्रकार ऐसी आर्य जाति कम हुई। ऐसी प्रक्रिया कुछ वर्ष चलते रहनेसे प्रति दिन आर्यजाति घट जाती है और कुछ शतकोंमें आर्य अनार्य बनजाते हैं। और इतिहासके दृष्टिकोणसे आज आर्य कोई नहीं। क्योंकि उनका सिद्धान्त है कि आर्यजातिका अन्य जातियोंसे सर्वत्र मिश्रण होगया।

इतिहासकारोंकी व्याख्याके अनुसार श्रीराम और श्री कृष्ण भी आर्य नहीं कहलाये जासकते क्योंकि वे रंगसे गोरे नहीं थे, काले (नीले) थे। वेदव्यास तो कदापि आर्य नहीं होसकते, क्योंकि उनका रूप कालेपनमें इतना भयानक था कि उनके साथ नियोगके समय भयभीताने प्रथमवार आंखें बन्द करलीं और द्वितीयवार उसका पाण्डु-वर्ण होगया था। और परिणाम स्वरूप धृतराष्ट्र अन्धा और पाण्डु पाण्डुरोग पीडित दो सन्तानें उससे हुई। इतिहास-कारोंकी व्याख्याके अनुसार महाभारत, रामायण, पुराण आदिमें दिखाये ऐतिहासिक व्यक्ति अनार्य सिद्ध किए जा सकते हैं। और इतिहासकार इसे ऐसा कहना पसन्द भी करेंगे।

इतिहासकार वैदिक धर्मके कर्मकाण्डकी वस्तुओंको कहीं पृथ्वीके किसी भी कोनेमें देखते हैं तो कहते हैं कि आर्य यहां रहते थे, यहां रहते थे। मुख्य रूपमें इसकी पहचानके लिये वैदिक मंत्र वस्तुओंपर खुदे जहां मिलें अथवा यज्ञकुण्ड मिलें तब वह स्थान आर्योंका वास्तव्य स्थान गृहित धरा जाता है। यदि इन चीजोंको देखकर वास्तव्य स्थानकी पहचान कराते हों तो वह ठीक है क्योंकि आर्योचित गुण कर्म स्वभाव, ज्ञान कर्म उपासनावाले व्यक्ति वहां वास्तव्य करते होंगे, पर इतिहासकार यह कैसे धैर्य पूर्वक कह सकते हैं कि नुकैली नाकवाले, गोरे, ऊंचे, ऊंचे माथेवाले व्यक्ति ही वहां वास्तव्य करते थे ? और यदि यह ठीक है तो उनके सिद्धान्तके लिये पुष्टि कौनसी ?

वेदका आदेश है 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'। हम विश्वको आर्य बनायें। इतिहासकारोंकी व्याख्याके अनुसार विश्वको आर्य बनाना कठिन ही क्या पर असम्भव भी है। सारे विश्वमें नीली आंखोंवाले, नुकीली नाकवाले, गोरे, ऊंचे, ऊंचे माथेके व्यक्ति पैदा करनेकी कोशिश हास्यास्पद है। रंगरूप आकारसे आर्य बनानेकी प्रक्रिया भी वेदमें नहीं। फिर कैसे कहें कि ऐसी व्याख्यावाले व्यक्ति ही आर्य हैं।

पाठक वृन्द यदि गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो इस निर्णयपर आयेंगे कि आर्य यह व्यक्ति वाचक शब्द है वंश अथवा जाति वाचक नहीं। और विश्वको आर्य यदि बनाना है व्यक्ति व्यक्तिको सुसंस्कृत, सुयोग्य, ज्ञानी, सम्मान-नीय बनाया जाना चाहिये। जिसकी प्रक्रिया वेदमें दर्शायी सीख, आचार संहिता है। वेदादेशानुसार ज्ञान कर्म और उपासनामें अपना जीवन बिताना ही आर्यत्वकी पहचान है और ऐसे व्यक्ति ही आर्य हैं।

चाहे कोई पंजाबी हो, बंगाली हो, बिहारी हो, मद्रासी हो, कश्मीरी हो, मराठी हो, इटालियन हो, अरबी हो, इराणी हो, अंग्रेज हो, चीनी हो, रशियन हो, अमेरिकन हो, जर्मन हो, आफ्रीकी हो, फ्रेंच हो, पृथ्वीपरके सब मानव अपना अपना पृथक व्यक्तित्व रखते हैं। इनमेंसे जो कोई भी व्यक्ति अपनेको आर्यत्वमें ढालले, वह आर्य है। आर्यत्व किसी एक वंश या जातिकी मिलकियत नहीं है। जो अपने

आपको आर्य कहलाती आये और अनार्यत्वको अपने गुण कर्म और स्वभावसे दिखाती चली आये। स्मरण रहे, जब अर्जुन कुरुक्षेत्रपर अनार्यत्व पूर्ण व्यवहार किया रहा था, तब श्री कृष्णजीने भगवद्गीताका उपदेश दिया और अनार्यत्वसे पृथक् होनेकी सलाह दी। यह निःसंशय स्पष्ट है कि आर्य यह शब्द आर्योचित संस्कारसम्पन्न व्यक्तियोंका वाचक एक परम पवित्र और आदरणीय शब्द है। और यह कुरुक्षेत्रकी घटना उसका अप्रतीम उदाहरण है।

द्रविड मुन्नेत्र कषगमको विचार करना चाहिये हम क्या कर रहे हैं। प्रगतिशील यह भारतीय संस्कृति स्वयं आर्य संस्कृति है और वे उसके घटक हैं। उनका कहना कि उत्तर भारतीय आर्य हैं और दाक्षिणी अनार्य होनेसे उनपर राज्य और भाषा थोपे जा रहे हैं, नितान्त भ्रमपूर्ण है। जिस इतिहासकी सीखके कारण वे ऐसा कह रहे हैं वही इतिहास कहता है कि अंग्रेज आर्य हैं। अंग्रेजोंकी भाषा अंग्रेजी भी आर्योंकी ही है। और यह ऐतिहासिक सिद्धान्त सत्य माना जाता तो कोई कारण नहीं था कि उत्तर भारत दक्षिण भारतसे कहीं अधिक मात्रमें स्वतन्त्रता संग्राममें अंग्रेजोंसे जूझता जो उनके ही वंशके थे। उत्तर भारत तो अंग्रेजीको भी भारतसे बाहर निकालनेके लिये कटिबद्ध है। क्या मैं पुनः मम द्रविड मुन्नेत्र कलहमसे पूछ सकता हूं कि यदि उत्तर भारतीय और अंग्रेज आर्य हैं तो आर्योंकी अंग्रेजी क्यों माथे पर थामे सम्मानकी सांस ले रहे हो। हिन्दी भाषाका यदि अपमान करना है, उससे यदि द्वेष है तो अंग्रेजीके साथ क्यों नहीं, जो आर्यपरिवारकी ही भाषा है।

ना कोई उत्तरी है ना कोई दाक्षिणी हम सब अपने ज्ञान, संस्कार, सुयोग्यता और सम्माननीयतासे सम्पन्न होनेके कारण आर्य हैं।

द्रविड मुन्नेत्र कषगमके सदस्य यदि अभियान चलाना चाहें तो अज्ञान, असंस्कृतता, अयोग्यता, अकर्मण्यता, नास्तिकता, बेकारी, भूख आदिके विरुद्ध अभियान चलावें; और पैसेका सदुपयोग करें। सराहनीय और विवेकपूर्ण कार्य होगा यदि हम एक जैसे संस्कार और संस्कृतिमें पके अपने आपको अपने राष्ट्रके अविघटित एकात्मिकता युक्त कुटुम्बी कहलानेका गौरव प्राप्त करेंगे।

× × ×

सेवाका महत्व समझिये

(लेखक— श्री शिवनारायण सक्सेना, एम. ए., विद्यावाचस्पति, शि. प्रभाकर)

इस क्षणभंगुर संसारमें हाथसे निकल जानेके बाद पुनः प्राप्त न होनेवाली एक ही वस्तु है। अन्य दैनिक उपयोगी भौतिक पदार्थ जिनकी प्राप्तिसे हमें प्रसन्नता होती है, एकबार प्रयत्न करनेपर अनेकबार प्राप्त किये जा सकते हैं, पर समय ऐसी मूल्यवान् निधि है जो एकबार व्यतीत हो जानेके बाद पुनः हाथ नहीं लगती। पूरे जीवनकी कमाई इसके बदलेमें देनेको तैयार हो जानेपर खोया हुआ क्षण पुनः नहीं लौटता। फिर भी इस ओर किसीका भी ध्यान नहीं है। इन मूल्यवान् क्षणोंमें यदि परिवार, समाज या राष्ट्रकी थोड़ी बहुत सेवा कर दी जाती, तो कितना ही अच्छा रहता। पर हमें तो अपने जीवनके गोरखधन्धेसे ही समय नहीं मिलता। प्रातः होता है और फिर धीरे धीरे सन्ध्या हो जाती है। पर घर गृहस्थी तथा अन्य नाना जंजालोंमें लगे रहते हैं। हमारा कर्तव्य तो यह था कि यह सुर दुर्लभ मानवशरीर जिस उपयोगी सेवा कार्यके लिये प्राप्त किया था, उस ओर प्रयत्न करते। भारतीय संस्कृति प्रतिक्षण सेवाके मार्गको अपनानेके लिये प्रेरणा देती है।

सेवाधर्मको सबसे बड़ा धर्म समझकर जनता जनार्दनकी सेवा करना ही सबका ध्येय होना चाहिये। भारतीय ही नहीं, विश्वके महापुरुषोंने सबसे अधिक सेवाको महत्त्व देकर अच्छे उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। स्वामी विवेकानन्दने भगवत् साक्षात्कार तकका मार्ग सेवा मानते हुए उपदेश दिया है। 'मैं एक ऐसा धर्म चाहता हूं जो हम लोगोंमें आत्मविश्वास तथा जातीय मर्यादाओंके प्रति निष्ठा जगावे और जन जनको अन्न-वस्त्र तथा शिक्षा देनेके साथ ही हमारे चारों ओरकी सभी दुःख वेदनाओंको दूर करनेकी शक्ति दे। यदि भगवान्का साक्षात्कार करना चाहते हो तो मनुष्यकी सेवा करो।'

साधना और सेवाका घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने पिताकी स्तुति तथा आगे पीछे तो घूमता है, पर किसी कार्यकी आज्ञा देते ही जो चुराता है, भागता है और आनाकानी करता है। वैसे ही जो व्यक्ति ईश्वर आराधनामें रत है पर सेवाका जीवनका दूसरा पहलू नहीं बनाते, उनका विकास एकांगी ही तो होगा। आप स्वयं विचारिये कि पूजापाठ एकाग्रतासे कितनी देर की जा सकती है। घण्टे दो घण्टे साधना करनेके बाद फिर मन वहीं से भागने ही तो लगता है। फिर उस मनको अन्य कार्योंमें जुटानेके लिये भी किसी आश्रयकी आवश्यकता है। यदि हमारे अन्दर दूसरोंकी सेवाका भाव है तो हम चलते फिरते दूसरेकी भलाई कर सकते हैं। नारदपुराणमें लिखा है कि 'जहां वृक्ष अपने मूलफल द्वारा दूसरोंका उपकार करते हैं वहां यदि बुद्धिजीवी मनुष्य परोपकारी न हों तो वे मृतक ही हैं।'

'विदुरनीति' में महात्मा विदुरने समझाते हुए कहा है।

त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥
५।१७

अर्थात्— कुलकी रक्षाके लिये एक मनुष्यका, ग्रामकी रक्षाके लिये कुलका, देशकी रक्षाके लिये गांवका और आत्माके कल्याणके लिये सारी पृथ्वीका त्याग कर देना चाहिये।

पर आज हम, सेवाकी कौन कहे दूसरेको धक्का देकर प्रगतिमें आगे बढ़ना चाहते हैं, माता, बहिनों, दीन और दुर्बलोंको एक ओर हटाते हुए रेलगाड़ीमें अनेक व्यक्तियोंको चढ़ते हुए आसानीसे देखा जा सकता है। हमें तो यह चाहिये था कि जहांतक हो दूसरोंका उपकार करते रहें, क्योंकि

सेवाके द्वारा ही यश, सम्मान, कीर्ति और साक्षात्कारतक सम्भव है। अतः यदि आप संसारमें कुछ कर गुजरना चाहते हैं, आप अपनी संस्कृतिसे तनिक भी प्रभावित हैं, समाजमें दानवताके स्थानपर मानवताका वातावरण उत्पन्न करनेके इच्छुक हैं, राम, कृष्ण, ईसा, बुद्ध और गांधीकी सन्तान कहलानेमें यदि गर्वका अनुभव करते हैं, अथवा पुनः भारतको जगद्गुरुके सदृश सम्मान दिलाना चाहते हैं तो सेवाका मार्ग अपनाकर आगे बढ़िये। आप भविष्यमें इस मार्गमें इतना सन्तोष, आनन्द और उल्लास अनुभव करेंगे जिसका कुछ कहना नहीं।

मनुष्यताका लक्षण दूसरोंके दुःखदर्दमें हाथ बंटाना तथा किसी प्रकार भी सहयोग प्रदान करना है, यदि हृदयकी विशालता होगी तो सब कुछ सम्भव है। आचार्य विनोबा-भावेका कहना है "दो हाथ और दो पैर होनेसे मनुष्य मनुष्य नहीं होता। मनुष्य वह होता है जो दूसरोंके दुःखोंसे दुःखी और सुखसे सुखी होता है। घरमें जब अभाव होता है तो सब हिस्से बांटकर खाते हैं। सारा देश एक परिवार है और इसमें सबका हिस्सा है।" प्राकृतिक समस्त जड़ पदार्थ नित्य कर्तव्यनिष्ठासे अपने कार्यमें रत हैं। न तो वे थकते हैं और न अहसान ही दिखाते हैं। सृष्टिका यह महान् चक्र लेने और देनेसे ही तो चल रहा है, आकाश भाप लेकर पानी देता है, तो समुद्र पानी प्राप्त कर भाप देता है। वृक्ष ओला, गर्मी, धूप और वर्षाको झेलकर फल, फूल और पथिकको शीतल छाया प्रदान करते हैं। पशुओंको ही देखिये मूक होते हुए भी सेवामें जुटे ही रहते हैं।

कम खाकर कितनी अधिक सेवा करते हैं। फिर क्या हम इन जड़ पदार्थों और मूक पशुओंसे भी गये बीते हैं। इनसे ही हम कुछ सीखकर सेवाका स्वर्णिम सूत्र मानकर चलें, क्योंकि सेवा-पथ ही कल्याणदायक एवं शुभ पथ है। मानवजीवनका सच्चा प्रयोग और समयका सदुपयोग सेवाके द्वारा ही किया जा सकता है। आपका तमाम समय योंही गपशपमें चला जाता है उसे आप इस ओर लगाइये। क्योंकि जिस कार्यको हम अधिक महत्व देते हैं, उसमें अपना समय पैसा और मन बिना हिचकके लगाया करते हैं फिर सेवा जैसे उत्तम कार्यमें निःसंकोच अपना सबकुछ लगा सकते हैं।

स्वर्गीय स्वामी शिवानन्द सरस्वतीने जीवनमें सेवाकी प्रधानता बताते हुए कहा है। "आप अपने विचारोंको नियंत्रण करने तथा लक्ष्यपर मनको एकाग्र करनेमें सफल नहीं होते। इसका कारण क्या है? बुरे संस्कार ही इसके कारण हैं। आपमें शम नहीं है, आपका मन सांसारिक विचारोंसे सदा अशांत बना रहता है, आपने निष्काम सेवाके द्वारा अपने हृदयको शुद्ध नहीं बनाया है, उग्र निष्काम सेवा द्वारा ही आप अपने बुरे संस्कारोंका प्रक्षालन कर सकते हैं। तब आपको शान्ति तथा शमकी प्राप्ति होगी व पूर्ण एवं गम्भीर ध्यान लग सकेगा।"

सेवाका शुभारम्भ हमें पहले तो अपनेसे ही करना होगा। दूसरोंके आधीन जीवन व्यतीत करनेवाले अनेक व्यक्ति अपना समय तो नष्ट करते ही हैं साथ ही दुःख भी उठाते हैं। छोटे छोटे कार्योंके लिए बड़े क्रोधीले स्वभावके अपने परिवारवालों, सम्बन्धियों एवं नौकरोंपर हुक्म चलाया करते हैं। कार्यमें जरासी देर हो जानेपर हमारी गर्मीका पारा ऊपर चढ़ जाता है और ऊल जलूल बकनेमें भी देर नहीं लगती, यह सरासर अन्याय है और अपनेको निकम्मा बनानेका एक उपाय है। आप अपनेसे विचार करिये, आपको प्यास लगी है जितनी देरमें कहते सुनते हैं और पानी मंगाते हैं क्या उतनी देरमें आप स्वयं लेकर

नहीं पी सकते । मैं ऐसे अनेक व्यक्तियोंको देखा करता हूं जो अपने जीवनमें पूर्णतया लापरवाही बरता करते हैं ।

आप बाहर कहीं यात्रा पर जाते हैं तो आपका सामान आपकी माता, बहिन या पत्नी इत्यादि कोई ठीक करता है, आप उधर देखतेतक नहीं। पर जब आप चले जाते हैं और आवश्यकताकी वस्तुएं उसमें ढूंढते हैं तो उनका सर्वथा अभाव ही आपको मिलता है। लौटकर जब घर आते हैं तब आपको यह ध्यान आता है कि आप जिस सम्बन्धीके यहां गये थे उसके यहां ही दो चार वस्तुएं छोड आये हैं। जरा जरासे बाजारू कार्योंके लिये आप दूसरोंका मुँह देखते हैं इसलिए स्वयं करिये और अच्छा करिये, आपकाज ही महाकाज होता है।

जिन परिवारोंमें नौकरानियां या सेवक लगे हुए हैं उनकी बडी अजीब स्थिति है। यदि एक दिन कहारी न आये तो उन्हें बर्तन साफ करनेमें रोना आता है। घण्टेका काम दो चार घण्टोंमें होता है और कभी कभी तो कार्यालय जानेवाले बाबू तथा पाठशालामें जानेवाले बच्चे भोजन के स्थानपर जलपान ही करके चले जाते हैं। जैसे ही दो बजते हैं, प्रतीक्षा है नौकर आयेगा तब चाय बनेगी, फिर पीनेको मिलेगी। यह हाल नौकर रखनेवालोंका है। स्नान किया कपडे वैसे ही स्नानागारमें डाल दिये दिनभर भीगते पडे रहते हैं तब कहीं शामको घरकी कोई माता या बाहरी नौकर धोकर डालता है। जो अपना कार्य अपने आप नहीं कर सकते, उनसे यह किस तरह आशा की जाय कि समाज-सेवा जैसा कार्य उनसे बन पडेगा।

अतः यदि दैनिक कार्योंमें सफलताका श्रेय हमें प्राप्त करना है, पराये व्यक्तियोंको भी अपना आत्महितैषी बनाना है, सब हमारे सुख और दुःखमें सम्मिलित हों और सब हमें प्रेमकी दृष्टिसे देखें तो कल नहीं वरन आज ही सेवाकार्यके महत्वसे परिचित हों। उसे अपने जीवनमें स्थान दें। दूसरोंकी सेवासे पूर्व अपनी सेवा करें, इसके बाद दूसरोंको सेवा तन, मन, धनसे करते हुए अपनी कर्तव्यपरायणताका परिचय दूसरोंको दें।

प्रवास वर्णन :—

महामहोपाध्याय रूसमें

(लेखक— श्री श्री रा. टिकेकर)

[कुछ दिनों पूर्व पूना विश्वविद्यालयके उपकुलपति महामहोपाध्याय श्री दत्तो वामन पोतदार रूस सरकारके निमंत्रण पर वहांके प्रवास पर गये थे। वहांसे वे रूसकी चहुंमुखी प्रगतिकी जो छाप लेकर भारत लौटे, उसकी झांकी लेखक श्री टिकेकरके इस लेखमें पाठकोंको मिल सकती है।]

ठीक शीतके दिनोंमें और इतने वार्धक्यमें महामहोपाध्याय सोवियत रूसके प्रवास पर निकले, इसलिये उनके इष्टमित्र विशेष चिन्तित थे, क्योंकि नित्य स्नानकी और सात्विक आहारकी मर्यादाकी उनकी प्रतिज्ञा भी उन्हें दुःखदायी हो सकती थी। तो भी वापिस लौटनेपर उनके चेहरेपर कोई थकावटके चिन्ह नहीं थे, इसके विपरीत वे तरो-ताजा ही दीख रहे थे। उनके व्यवहारमें आनन्द ही आनन्द दीख रहा था। नया प्रदेश देखनेको मिला, नयी पुस्तकें देखनेको मिलीं, नये नये विद्वानोंसे परिचय हुआ, इसलिए यह आनन्द स्वाभाविक ही था। बच्चोंको नये खिलौनोंको देखकर जो आनन्द होता है, उसीके समान महामहोपाध्यायका आनन्द भी था, पर इनका यह आनन्द चिरकालीन और बिलकुल 'ब्रह्मानन्द सहोदर' था।

सभी नया और सभी भव्य

क्या क्या देखा, कहां कहां गया, किन किनसे मिला, इन सबके वर्णनका आरंभ कहांसे किया जाए, इसका निश्चय ही महामहोपाध्यायको नहीं हो पा रहा था। जो कुछ देखा व अनुभव किया, वह सभी कुछ नया और भव्य था।

'शिक्षा, स्वाध्याय और संशोधनके लिए विद्यार्थियोंको शालाओं, कालेजों और ग्रंथालयोंमें अत्यधिक सुविधायें दी जाती हैं और वे भी मुफ्त' महामहोपाध्यायने वर्णनकी शुरूआत की।

'हजारों विद्यार्थी अपने अध्ययनमें निमग्न रहते हैं, वहांके विद्यार्थियोंको अध्ययनकी जबर्दस्त अभिलाषा होती है। पुस्तकोंकी दूकानें कोने कोनेमें दिखाई देती हैं' यह कहते कहते अपने सामानमेंसे निम्न पुस्तकें निकालीं—

रशियन महाभारत (८ खण्ड)
रशियन लोकमान्य तिलक चरित्र
रशियन टैगोर चरित्र
रशियन 'सन् १८५७'

'लेनिनग्राडके पुस्तकालयमें दो करोडसे भी अधिक पुस्तकें हैं। पुस्तकोंकी सूचियोंके लिए ही एक इतना बडा हाल है, कि उसमें सैकडों विद्यार्थी बैठकर अध्ययन कर सकते हैं। संशोधकोंकी मदद करनेके लिए और उन्हें जो चाहिए वह साहित्य निकालकर देनेके लिए दो सौ व्यक्ति काम करते हैं। मायक्रोफिल्मिंगकी भी व्यवस्था है। बच्चोंकी पुस्तकें अलग और उनके लिए अध्ययनकी सुविधायें भी अलग हैं।' इस ग्रंथालयका प्रभाव महामहोपाध्याय पर अच्छा पडा है, ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। वहांकी सुविधाओंका वे सविस्तार वर्णन कर रहे थे।

प्राध्यापक और विद्यार्थियोंका सम्बन्ध

प्राध्यापक- विद्यार्थी सम्बन्ध, अध्ययनके मार्गका प्रदर्शन और प्राध्यापकोंके कार्यपर देखरेख, यह सोवियत पद्धति हमारे उपकुलपतिको बहुत पसन्द आई।

'प्रत्येक प्रोफेसरने क्या कार्य किया, कितने निबन्ध लिखे, नया ज्ञान क्या प्राप्त किया, इन सबका निरीक्षण हर पांचवें वर्ष होता है, उस निरीक्षणमें उत्तीर्ण होनेके बाद ही उसे आगेके पांच वर्षोंके लिए पुनः प्रोफेसर बनाया जाता है, इस कारण वहांके प्रोफेसर आलस्य नहीं करते।'

प्राध्यापकोंके समान विद्यार्थियोंकी भी परीक्षा होती है। वहां विद्यार्थियोंको मनमानी अभ्यासक्रम देनेकी अपेक्षा उसकी योग्यता और मनोवृत्तिका अध्ययन करके ही उसे विषय या अभ्यासक्रम दिया जाता है। उन्हें पूर्व ही योग्य सलाह मिलती है। इसलिए बीचमें ही अध्ययन छोड देनेवालोंकी संख्या थोडी ही होती है। सब काम योजनाबद्ध होते हैं, आदि अनेक विशेषतायें महामहोपाध्यायने बताई।

धनके अभावमें शिक्षा रुकती नहीं

सोवियत शिक्षापद्धतिमें आपको कौनसी विशेषता दीखी, यह पूछनेपर कुलगुरु बोले—

'धनाभावके कारण किसीकी शिक्षा रुकती नहीं, केवल पुस्तकीय शिक्षा वहां नहीं है। यांत्रिक शिक्षापर वहां ज्यादा जोर दिया जाता है।'

'प्रत्येकको खूब काम करना पडता है। वहां आलस्यसे कोई बैठा नहीं रहता। इसलिए कमजोर विद्यार्थी प्रमोशन आदि द्वारा आगे नहीं ढकेले जाते।'

'इन सबको सिद्ध करनेके लिए सोवियत आमदनीमें सरकारका भी बडा हिस्सा होता है और विद्यार्थियोंका भी।'

'इसलिए वहां शिक्षाकी वृद्धि बहुत जोरोंपर है।'

'शिक्षाके साधन भी अधिक मात्रामें मिलने लगे हैं।'

'सीखनेकी हवसवालोंके लिए भरपूर सुविधायें प्राप्त हैं, उन्हें किसी प्रकारके विघ्नका मुकाबला नहीं करना पडता।'' यह कहकर कुलगुरु आगे बोले कि 'इस सुविधाओंका लाभ उठाकर अध्ययनमें व्यस्त रहनेवाले अनेकों विद्यार्थी वहां है।'

मास्को विश्वविद्यालय, लुमुम्बा- मैत्री विश्वविद्यालय और लेनिनग्राड विश्वविद्यालयकी कुलगुरुने बहुत प्रशंसा की। लुमुम्बा विश्वविद्यालयकी नई इमारत खडी की जा रही है। वहांके विद्यार्थियोंकी संख्या शीघ्र ही दुगुनी हो जाएगी। जगभरके विद्यार्थी वहां आते हैं। इस प्रकार सब देशोंके विद्यार्थियोंके साथ पढनेसे कितना लाभ होता है।

[कुलगुरुने सब रूसका प्रवास अपने महाराष्ट्रीय पोशाकमें ही किया। सिर पर गोल पगडी, चुस्त पायजामा, लम्बा कोट और गलेमें जरीका दुपट्टा, यह वहां उनकी पोशाक थी। —सम्पादक]

पगडीका आश्चर्य

सब प्रवासमें कुलगुरुकी भेंट नई नई मण्डलियोंसे हुई। सोवियत जनताके लिए भी कुलगुरु नये ही थे। उनकी पगडीको लोगोंने कुतूहलसे देखा। कई विद्यार्थियोंने उनके माथे पर लगेहुए 'चन्दन' के त्रिपुण्ड्रके बारेमें भी पूछताछ की। कई मनुष्योंने यह भी पूछा कि यह पोशाक कहां की है। तब वे 'नेहरू-गांधी-हिन्दी' के बारेमें विचार करने लगे! बहुतसे 'पायोनियर' लडकों लडकियोंने हमारे कुलगुरुके गलेमें 'लाल' रंगका पायोनियरी स्कार्फ भी बांधा। ऐसे अनेकों स्कार्फ कुलगुरुके सामानमें मिले।

विश्वविद्यालयोंमें अध्ययनके अलावा कुलगुरुने नाटक, सिनेमा, सर्कस, बैले नृत्य आदि सांस्कृतिक कार्यक्रम भी देखे। पन्द्रह रीछोंका सर्कस और मॉस्कोमें बैले नृत्य उन्हें विशेष पसन्द आए! तुर्कमेनी उझबेकी सिनेमा और नाटक उन्होंने देखे। ताशकन्द अल्लाबाद इन आकाशवाणीके केन्द्रोंसे उन्होंने हिन्दीमें भाषण दिए।

ताशकन्द रेडियोसे उन्होंने 'सह नाववतु सह नौ भुनक्तु' यह वैदिक प्रार्थना सोवियत जनताको सुनाई और अल्लाबाद रेडियोसे उन्होंने आर्योंकी विश्वबन्धुत्ववृत्तिको सोवियत जनताके सामने रखा और—

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।

यह अपनी इच्छा आकाशवाणीसे प्रकट की।

मिनरल वाटर

शीतके प्रदेशमें आपका स्वास्थ्य कैसा रहा? खानपान की व्यवस्था कैसी रही? यह पूछनेपर कुलगुरुने कहा—

'वहां 'मिनरल वाटर' नामक जो पानी पीनेको मिला, उससे मेरी तबीयत यहांकी अपेक्षा भी अच्छी रही। उस पानीमें निश्चयसे कोई अजीब गुण है। उसकी एक बोतल भी मैं अपने साथ ले आया हूं।'

सोवियत सचित्र वाङ्मय, अल्लाबाद विश्वविद्यालयमें वहांके विद्यार्थियों द्वारा निकाले गए अनेक चित्र, पुस्तकें, सोवियत परिचितों द्वारा दी गई भेंटें, स्वयं कुलगुरुके द्वारा खरीदी गई वहांकी यादगारें, उझबेकी और बालकलावा टोपियां, टॉलस्टॉय और अन्तरिक्ष वैमानिकोंके चित्रोंसे युक्त बर्तन, चाय पीनेके ग्लासोंका स्टेण्ड, लकडीके काम, इत्यादि अनेक वस्तु कुलगुरु अपने साथ लाये थे।

अन्तमें मैंने उनसे इस नये जगतके विषय उनके विचार पूछे। वे बोले—

'जो कुछ देखा, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, उस देशमें उन लोगोंने स्वावलंबनसे विलक्षण प्रगति की है। आंखोंसे स्वयं प्रत्यक्ष किए बिना उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।'

❀ ❀ ❀

वैदिक ऋचाओंकी ओजस्विता

(लेखक— श्री पं. वेदव्रत शर्मा, शास्त्री)

[गताङ्कसे आगे]

समाजकी स्थितिके मुख्य चार आधार हैं, जिन्हें हम शिक्षा, रक्षा, उत्पादन और श्रम कहते हैं। प्रत्येक समाजके सदस्यका कर्तव्य होता था कि उक्त कर्तव्योंमें कमसे कम एक कर्तव्यके सम्पादनकी योग्यता और उत्तरदायित्वका चयन करे। मनुष्य समाजकी शिक्षाका उत्तर-दायित्व पूरा करता हुआ मानव-मात्रको शिक्षित और कर्तव्य-निष्ठ बनावे, या अपनी योग्यता तथा बाहु-बलसे समाज और राष्ट्रकी रक्षा करे, या अपनी पूंजी और उत्पादनके द्वारा समाज और राष्ट्रकी आर्थिक स्थिति ठीक रखता हुआ मानवमात्रके भरण-पोषणका उत्तरदायित्व निभाये, या अपने श्रमसे उक्त तीनो वर्गोंकी सेवा करे। शिक्षकमें ज्ञानकी प्रधानता होती थी, रक्षकमें ज्ञानकी अपेक्षा बाहु-बलकी प्रधानता होती थी। इसी प्रकार उत्पादक और श्रमिक भी ज्ञानकी अपेक्षा शारीरिक बल ही रखता था। इन्हें लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके नामसे सम्बोधित करते थे।

हमारा समाज और राष्ट्र इसी वर्ण-व्यवस्था पर ही सञ्चालित था। संसारमें कोई भी राष्ट्र या समाज बिना शिक्षा, रक्षा, उत्पादन और श्रमके क्षणभर भी नहीं टिक सकता। यही थी भारतकी राष्ट्र-निर्माणकी नीति। इसमें मानवताकी रक्षा तथा उसका विस्तार ही था। राष्ट्र-निर्माणमें शासनकी भावना नहीं थी। इसलिये शिक्षक, रक्षक, उत्पादक और श्रमिक ही राष्ट्रके चार प्रधान अङ्ग थे।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

मनुके इस श्लोकसे यह विदित होता है कि आदर्श चरित्रकी शिक्षाके प्रसार द्वारा मानवताका प्रसार और विस्तार हो सकता है। सारी पृथिवीके सब मनुष्य भारतके विद्वानोंके चरित्रों और उपदेशोंके द्वारा अपनेको पूर्ण मानव बनावे। इसी पवित्र उद्देश्यको लेकर भारतीय दूसरे देशोंमें जाते थे। इसी लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए चक्रवर्ती-राज्य स्थापित किये जाते थे। समाज और राष्ट्रके कर्तव्योंका परिमार्जन आश्रम व्यवस्था पर ही आधारित था। भारतीयता आश्रम तथा वर्ण व्यवस्था पर ही दृढ थी, जबतक ये दो स्तंभ सुदृढ थे, तबतक भारतीयताका ह्रास नहीं हुआ। इन्हीं सुदृढ स्तम्भों पर मानवताकी नींव रखी गई थी। धर्मके सर्व-सामान्य अङ्ग धृति, क्षमादि इसके लघुस्तम्भ थे। सर्व-सामान्य धर्मके निम्नाङ्कित अङ्गोंका पालन सबके लिये आवश्यक था। इसे मनु सार्व-भौमिक धर्म मानते थे—

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय-निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म-लक्षणम्॥

'धैर्य, क्षमा, मनको बुरी भावनाओंसे रोकना, चोरी न करना, इन्द्रियोंको संयममें रखना, बुद्धिमान् होना, विद्या प्राप्त करना, मनसा, वाचा, कर्मणा सत्यका आचरण करना, क्रोध अर्थात् गुस्सा न करना, ये धर्मके दस अङ्ग हैं। इन्हें पालन करना चारों वर्णों और मानव-मात्रका कर्तव्य था। और प्रत्येक वर्णके अपने-अपने विशेष धर्म भी थे। ऋषियोंने समस्त राष्ट्रके मनुष्योंको वर्ण और आश्रमकी मर्यादासे पिरो रखा था।

राष्ट्रको ऋषियोने विष्णुका रूपक देकर इसकी महत्ताका बोध कराया था। विष्णुको चतुर्भुज माना गया है। क्योंकि राष्ट्रकी शक्तियां मुख्य रूपसे चार ही हैं। इन्हें शंख, चक्र, गदा और पद्मके नामसे अवगत कराया गया है। शंख ब्राह्म-शक्तिका द्योतक है। चक्र और गदा अस्त्र और शस्त्रका प्रतिनिधित्व करते हैं। पद्म, कोष तथा राज्यलक्ष्मी और श्रीका द्योतक है। राष्ट्रकी स्थिति विद्वानों और वैज्ञानिकोंके ज्ञान पर ही आश्रित है। ब्राह्मशक्ति शिक्षा प्रसारका महानतम उत्तरदायित्व वहन करती है। क्षात्र-शक्ति राष्ट्रकी रक्षाका उत्तरदायित्व सैनिकों द्वारा निभाया करती है। राष्ट्रमें उत्पादनका उत्तरदायित्व पूंजी-पति और श्रमिक वर्ग वहन करते हैं। इस प्रकार इन्हें क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य और शूद्रके नामसे पुकारा गया है। यही राष्ट्र-रूपी विष्णुके अङ्ग माने गये हैं।

राष्ट्र एक विराट् शरीर

वैदिक एवं वैदिकोत्तर पुराणसाहित्यमें इस राष्ट्ररूपी विष्णुका वर्णन बहुत बडे पैमाने पर किया गया है। वैदिक मंत्रोंके भाष्यकारोंकी शैलीकी यह विचित्रता या विशेषता ही रही है, कि उन्होंने हर मंत्रोंको आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक क्षेत्रोंमें देखनेका प्रयास किया है। 'अथाध्यात्मं शरीरं' के अनुसार आध्यात्मिकका अर्थ शारीरिक है। 'अथाधिभूतं समाजः' के नियमानुसार सामाजिक उन्नति एवं स्थितिको बतानेवाले मंत्रार्थोंको आधिभौतिक कहा है और विश्वान्तर्गत भावोंका प्रदर्शक मार्ग आधिदैविक है। आधिभौतिकको हम सामाजिक या राष्ट्रीय भी कह सकते हैं। वेदोंमें राष्ट्रको एक शरीर माना है, जिसमें मुख, बाहु, पेट आदि सभी अवयव विद्यमान हैं। वेदोंका प्रख्यात सूक्त पुरुष-सूक्त वस्तुतः राष्ट्र-पुरुषके शरीरका वर्णन है, उसके प्रथम मंत्रमें ही एक ऐसे पुरुषका वर्णन है, जो हजारों सिर और हजारों आंखोंसे युक्त है—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सः भूमिं सर्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥

ऋ. १०।९०।१

'एक हजार आंख, हजार सिर और हजारों पैरोंसे युक्त पुरुष है, जो सारी पृथ्वी पर फैला हुआ है, यह इस दशांगुल विश्वसे भी ऊपर है।' यह समाज या राष्ट्ररूपी पुरुष है। मनुष्योंकी आंखे, सिर, पैर इस पुरुषके ही हैं। वह समाज सब पृथ्वीपर व्याप्त है, पर फिर भी वह इससे ऊपर है। व्यक्ति नाशवान् है। मनुष्य मर जाता है, पर समाज या राष्ट्र बना रहता है। वह अक्षुण्ण शाश्वत, अजर, अमर और अविनाशी है। उस समाजरूपी पुरुषके अवयवोंका वर्णन भी इसी पुरुष सूक्तके १२ वें मंत्रमें इस प्रकार किया है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥

'ब्राह्मण इस राष्ट्रपुरुषका मुख है, क्षत्रिय बाहू है, वैश्य जांघें हैं और जिस प्रकार मानवशरीरमें मुखको प्रधानता दी गई है उसी प्रकार राष्ट्रमें विद्वानोंको प्रमुखता प्रदान की गई है, क्योंकि मस्तिष्क ही शरीरका संचालन करता है इसी प्रकार विद्वान ही राष्ट्रके कार्योंका संचालन करते हैं। शरीरमें जो स्थान भुजाओंको प्राप्त है, वही स्थान और गौरव राष्ट्रमें क्षत्रियों अर्थात् सैनिकोंको प्राप्त है। शरीरमें पेटको जो स्थान प्राप्त है वही स्थान राष्ट्रमें वैश्योंको प्राप्त है। इसी प्रकार शरीरमें जो स्थान पैरोंको प्राप्त है वही स्थान राष्ट्रमें श्रमिकोंको प्राप्त है। विद्वान् राष्ट्रके मुख, सैनिक राष्ट्रके बाहू, पूंजीपति राष्ट्रके उदर और श्रमिक राष्ट्रके दोनों पैरके समान हैं। जिस प्रकार शरीरके लिए सभी अङ्ग अपने अपने स्थानपर प्रमुख हैं उसी प्रकार राष्ट्रमें सभी वर्ग अपने अपने स्थानपर महत्वपूर्ण और आवश्यक हैं।

जिस प्रकार मस्तिष्क और बाहू दोनों मिल कर शारीरिक कार्योंका सम्यक् सम्पादन करते हुए शरीरकी व्यवस्था करते हैं, उसी प्रकार राष्ट्रमें विद्वान, सैनिक और शासक-वर्ग मिलकर राष्ट्रके सारे कार्योंको भलीभांति पूरा करते हैं। जिस प्रकार शरीरमें सब अंगोंकी एकात्मता व परस्पर सहयोग उत्कृष्ट स्वास्थ्यका चिन्ह है, उसी प्रकार राष्ट्रमें सभी वर्गोंका ऐक्य व परस्पर सहयोग उन्नत राष्ट्रके लक्षण हैं—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥

"जिस राष्ट्रमें आत्मनिष्ठ विद्वान् और राष्ट्र-पति आपसमें मिलकर सम्यक् विचार करके राष्ट्रके कार्योंको करते हैं, वह राष्ट्र शुभ कर्मों अर्थात् अपनी योजनाओंको पूरा करके सभी प्रकारके सुख और कल्याणसे सम्पन्न रहता है।"

इस प्रकार भारतकी राष्ट्र-शक्ति प्राचीनकालमें समुन्नत थी। राष्ट्रका स्वामी ईश्वरको मानकर विद्वज्जन और शासक वर्ग राज्य-कार्यका सम्पादन करते थे।

वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम। यजु. १८।२९

"हम उस प्रजापति परमेश्वरकी प्रजा या सन्तान हैं।"

राष्ट्रपतिके मौलिक-गुण

राष्ट्र-पति या राजा विशिष्ट प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति ही होते हैं। क्योंकि उन्हींके आदर्शोंका प्रजा-गण अनुकरण करते हैं, "यथा राजा तथा प्रजा" की उक्ति तो सर्व-विदित ही है। मनुने उसके मौलिक गुणोंका उल्लेख अपनी स्मृतिमें इस प्रकार किया है—

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वती ॥१

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
स कुबेरः सः वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः ॥२॥
(मनुस्मृति)

'राष्ट्र-पतिमें इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और कुबेरकी शक्तियाँ पुञ्जी-भूत होकर रहती हैं। राष्ट्र-पति इन्द्रकी तरह बलवान्, वायुकी भांति गति-शील, यमकी भांति नियामक, सूर्यकी भांति तेजस्वी, अग्निकी तरह नायक, वरुणकी भांति गुणाढ्य, चन्द्रमाकी भांति मुदित करनेवाला, और कुबेरकी भांति धनी होता है।' राष्ट्र-पतिका प्रभाव भी इन्हीं देवताओंके समतुल्य होता है।

इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठन् दिवानिशम्।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥ १ ॥
सर्व-भूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वराज्यमधि गच्छति ॥ २॥
(मनु)

राजा या राष्ट्र-पतिको संयमी होना चाहिए। इन्द्रियोंको वशमें करके ही राष्ट्रपति अप्राप्त यशकी प्राप्ति करता है। जो राजा या राष्ट्र-पति इन्द्रियोंका गुलाम होता है, वह प्रजाको अपने शासनमें नहीं रख सकता। विषय-लोलुप राजा प्रजाओंके हितोंको सर्वथा नष्ट कर देता है। अपने राष्ट्रकी स्वतंत्रता भी गवां देता है। इतिहास इस बातका साक्षी है। यह सब प्राणियोंमें स्वजातीय आत्म-तत्वका अनुभव करता है और सभी पदार्थोंमें परम-शक्तिका ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार समदर्शी होकर आत्म-यज्ञ करता हुआ स्वराज्यको प्राप्त होता है। राजा या राष्ट्र-पति इन्हीं आदर्शोंके द्वारा प्रजाका हृदय-सम्राट् होता है। प्रजाके शरीर-मात्र पर शासन न करके हृदयपर शासन करता है।

भगवान् वाल्मीकिने भी अपने अमर-काव्य रामायणमें सूर्यवंशी शासकोंका अनुपम आदर्श-चित्र सबके सामने उपस्थित किया है—

ततः पश्यति धर्मात्मा तत्सर्वं योगमास्थितः।
पुरा यत् तत्र निर्वृत्तं पाणावामलकं यथा ॥१॥
(वा. रामा. बाल. ३।६)

'धर्मात्मा अर्थात् कर्मनिष्ठ योग-वृत्तिमें स्थिर होकर प्राचीन कालके राजा राष्ट्रके रहस्योंको विवेक-दृष्टिसे सरलतया देखते थे, जिस प्रकार कोई मुट्ठीके आँवलेको सम्यक् देखता है।'

तत्सर्वं तत्त्वतो दृष्ट्वा धर्मेण स महाद्युतिः।
अभिरामस्य रामस्य चरितं कर्तुमुद्यतः ॥ २ ॥
(वा रामा. बाल. ३।७)

'आत्म-ज्योतिसे तेजस्वी रघुवंशी धर्म और मानवताकी दृष्टिसे वास्तविकरूपसे न्यायको देखनेवाले होते थे। इस प्रकारके रामके पूर्वजोंका सुखदायी जीवन-वृत्त लिखनेमें उद्यत हूँ।' इस प्रकार भगवान् वाल्मीकि एक आदर्श राष्ट्र-पति या राजाका चरित्र-चित्रण करते हैं।

कामार्थगुणसंयुक्तं धर्मार्थ-गुणविस्तरम् ।
समुद्रमिव रत्नाढ्यं सर्व-श्रुतिमनोहरम् ॥
(वा. रामा. बाल. ३।८)

'धर्मकी मर्यादामें चलते हुए अर्थ और गुणोंसे संयुक्त, सबके श्रवणोंको मनोहर लगनेवाले समुद्रकी भांति अपने चारित्रिक गुणोंसे आढ्य-चरित्रवाले रघुवंशी धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका सम्पादन करते थे। रघुवंशियोंका चरित्र समुद्रकी भांति अनेकानेक गुण-रत्नोंकी समृद्धिसे युक्त था।' जैसे सूर्य-देव अपनी किरणोंसे पृथिवीके जलको आकर्षित करके पुनः वर्षा द्वारा उसी जलसे पृथिवीको अभिषिक्त करते हैं, उसी प्रकार सूर्यवंशी राजा जनताको उन्नतिके लिए ही उनसे कर ग्रहण करते थे। चूंकि वे प्रजाकी खुशीके लिए सतत यत्नशील रहते थे। प्रजाके प्रमोदको बढानेके लिए सभी प्रकारके साधनोंका एकत्रीकरण करते थे। इसी कारण प्रजाने उन्हें राजा कहना प्रारम्भ कर दिया था। कालिदासके शब्दोंमें 'राजा प्रकृति-रञ्जनात' ही राजा होता था। प्रजानुरञ्जन ही रघुवंशियोंकी अपनी मौलिक विशेषता थी। नैतिक-बलशाली शासक ही प्रजाकी रक्षा कर सकता है।

इस प्रकार उत्तम और कुशल राजा या राष्ट्र-पतिको उक्त गुणोंका अनुकरण करना चाहिये। नैतिक-बलके द्वारा ही जनता-जनार्दनकी सेवाका व्रत लेना चाहिए। राजा विक्रमादित्य चटाई पर सोते थे और मिट्टीके पात्रमें पानी पीते थे। रातमें वेश बदल कर प्रजाकी स्थितिका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करते थे। सुना जाता है कि औरंगजेब कुरानकी आयतोंको लिख कर अपना भोजन प्राप्त करता था। चन्द्रगुप्तका प्रधान-मंत्री चाणक्य झोपडीमें रहता था और चटाई पर सोता था।

इतने विशाल चक्रवर्ती साम्राज्यके महामंत्री चाणक्यका जीवन, रहन-सहन इतना सीधा-सादा हो सकता है, यह

भी कल्पनातीत है। उसकी झोपडीका वर्णन महाकवि विशाखदत्तने अपने नाटक 'मुद्राराक्षस' में इस प्रकार किया है—

उपलशकलमेतत् भेदकं गोमयानां
वटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोम एषः ।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिः
विनिर्मितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम् ।

'झोपडीके एक कोनेमें कण्डोंको तोडनेके लिए पत्थरका टुकडा रखा हुआ है, दूसरे कोनेमें शिष्यों द्वारा लाई गई कुशाओंका ढेर है। एक जगह हवनके लिए समिधायें रखी हैं। इन सभी पदार्थोंसे युक्त चाणक्यकी टूटी-फूटी झोपडी दिखाई दे रही है।'

ये लोग प्रजाके धनका उपभोग बुद्धि-सम्मत नहीं समझते थे। राजा प्रजापर शासन करता था और राजा आप्त-विद्वानों से अनुशासित होता था। जो राजा या राष्ट्र-पति आप्त-वचनोंका अनुसरण न कर केवल भौतिक-वादी, अनैतिक और चरित्रभीरु होकर प्रजापर बलात् शासन करना चाहता है वह स्थायी राज्य-सत्तावाला नहीं रह सकता। इसके लिए आप्त-वचनोंका आचरण करना राजा या राष्ट्र-पतिका मुख्य कर्तव्य होता है। इसके समर्थनमें महाकवि वाल्मीकिके शब्दोंको भी सुनिये—

क्षत्रं ब्रह्म-मुखं चासीत् वैश्या क्षत्रमनुव्रताः ।
शूद्राः स्वधर्म--निरतास्त्रीन् वर्णानुपचारिणः ॥

"क्षत्रिय ब्राह्मणों यानी आप्त-विद्वानोंको अपना प्रमुख समझते थे, वैश्य क्षत्रियोंके अनुकूल आचरण करते थे। शूद्र शारीरिक-श्रम करनेवाले, जो कि बौद्धिक शक्तिसे कुंठित थे, वे अपनी सेवाओंसे तीनों वर्णोंकी सेवा करते थे।" ऋषि-मुनि शुद्ध-ज्ञानसे शासित थे, जो कि ज्ञानालोकके द्वारा प्रजाका पथ-प्रदर्शन करते थे। इनका जीवन तप, संयम और त्यागपर ही आश्रित था। इस प्रकार सुराज्यकी आधार शिला संयम और आत्मानुशासन पर ही रखी गई थी। राजा या राष्ट्र-पतिका प्रजासे पिता-पुत्रका सम्बन्ध था। जिस राष्ट्रका शासन आत्मानुशासित न होकर केवल कानून और दण्डपर ही आधारित रहता है, वह राष्ट्र शीघ्र ही गुलाम होजाता है या गृह-युद्धका शिकार बन जाता है। राजा और प्रजाका सम्बन्ध भक्षक और भक्ष्यका होजाता है। इस बातका उल्लेख शत-पथ ब्राह्मणमें भी पाया जाता है। स्वामी दयानन्दने निम्नांकितांश अपने सत्यार्थ-प्रकाशमें उद्धृत किया है।

राष्ट्रमेव विश्या हन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः । विषमेव राष्ट्रायाद्यां करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुं मन्यते इति ।

शत. कां. १३। प्र. २। ब्र. ३। कां. ७।८।

"जो प्रजासे स्वतन्त्र, स्वच्छन्द राजा और शासक-वर्ग रहे, तो वह राज्यमें प्रवेश करके प्रजाका नाश किया करे, जिस लिए अकेला राजा स्वाधीन और उन्मत्त होकर प्रजाका नाशक होता है। वह राजा प्रजाको खाये जाता है। इस लिए किसी एकको राज्यमें स्वाधीन न करना चाहिए। जैसे सिंह वा मांसाहारी हृष्ट-पुष्ट पशुओंको मार कर खाजाते हैं, वैसा ही स्वतंत्र राजा प्रजाका नाश करता है अर्थात् अपनेसे अधिक किसीको नहीं होने देता।" श्रीमान्को लूट खसूट, अन्यायसे दण्ड लेके अपना प्रयोजन पूरा करेगा। इसलिए सुराष्ट्रमें शासक वर्ग पर आप्त-विद्वानों और धार्मिक जनोंका नियंत्रण होना चाहिए।

प्राचीनकालके शासकोंने, जो समस्त विश्वमें अपने महान सद्गुणोंका प्रसार करना चाहते थे, सर्व प्रथम अपने राज्य प्रबन्धकी ओर ध्यान दिया, इस मनोरथकी पूर्तिके लिए उन्होंने सर्व प्रथम अपने परिवारकी सुव्यवस्था पर ध्यान दिया। परिवारको सुव्यस्थित करनेके लिए उन्होंने अपने आपको सुसंस्कृत बनाना आवश्यक समझा। अपने आपको संस्कृतिवान् बनानेके लिए उन्होंने अपने हृदयको पवित्र करना श्रेयस्कर माना, हृदयको पवित्र करनेके लिए उन्होंने अपने विचारोंमें ईमानदारी बरतना अपरिहार्य समझा, विचारोंमें ईमानदारी पैदा करनेके लिए उन्होंने अपने ज्ञानका विस्तार किया और ज्ञानके विस्तारका एक ही मूल मंत्र है कि अपने चारों तरफ विद्यमान भौतिक एवं मानवीय तत्वों-का तटस्थ अध्ययन एवं अन्वेषण किया जाय।

उचित अन्वेषणसे उन्हें ज्ञानकी उपलब्धि हुई। पूर्ण ज्ञानकी उपलब्धिसे वैचारिक निष्ठाका उदय हुआ। वैचारिक निष्ठासे उनका मन निर्मल हुआ। मन और हृदयके पवित्र होनेसे उनका व्यक्तित्व संस्कृत हुआ, व्यक्तित्वके सुसंस्कृत होनेपर परिवारकी सुव्यवस्था उत्पन्न हुई। परिवारोंकी सुव्यवस्थाके उत्पन्न होनेपर समाज सुव्यवस्थित हुआ और समाज की सुव्यवस्था होनेसे ही समस्त राज्यमें सुव्यवस्था, सुख

और समृद्धिका आविर्भाव हुआ और विश्वकी मानवताके लिये सुख और शान्तिका पथ प्रशस्त हुआ।

यस्य प्रसादे पद्मा श्री विजयश्च पराक्रमे ।
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः ॥

मनु. ।

* * *

तृतीय मुक्तिका--
आदर्श--मन्त्रिमण्डल

भारतने बापूके नेतृत्वमें चल कर स्वराज्य प्राप्त किया, परन्तु जब स्वराज्यको सुराज्यमें परिणत करना हुआ, तो भारत दुर्भाग्य-वश उनके नेतृत्वसे वञ्चित हो गया। गत पृष्ठोंमें मैंने आदर्श-राष्ट्रपतिका चित्र अङ्कित करनेका प्रयास रघु-वंशियोंके आदर्शों द्वारा किया। यहाँ आदर्श-मन्त्रि-मण्डलकी रूप-रेखा वाल्मीकिके शब्दोंमें उपस्थित है। क्योंकि राष्ट्र-पति अपने विस्तृत राष्ट्रका सुप्रबन्ध तभी कर सकता है, जब कि उसे आदर्श-मन्त्रि-मण्डलकी सहायता प्राप्त हो। अन्यथा यह महान कार्य अति दुस्तर हो जाता है। संयमित और त्यागी मन्त्रि-गण ही राष्ट्रीय-भावनासे परि-शुद्ध होते हैं। ये लोग राष्ट्रके हित-साधनमें कभी भी अन-वधान नहीं होते। काम और लोभ ही इस उत्तरदायित्वमें बाधा उपस्थित करते हैं। इनकी अपूर्ति अथवा प्राप्तिकी बाधासे मन्त्रि-मण्डलमें क्रोधकी आग प्रचण्ड होकर सारे राष्ट्रको लकडीकी तरह जला देती है। अतः आदर्श-मन्त्रि मण्डलकी स्थापना करनी चाहिए।

भविष्य-द्रष्टा ऋषि वाल्मीकिने शाश्वत आदर्श-मन्त्रि-मण्डलकी अलौकिक मर्यादा निर्धारित की है—

परस्परानुरक्ताश्च नीतिमन्तो बहु-श्रुताः ।
श्रीमन्तश्च महात्मानः शस्त्रज्ञाः दृढ-विक्रमाः ॥

'वाल्मीकि १'

इस श्लोकका एक एक शब्द हमारे हृदय-नेत्रको उद्घा-टित करता है। इस श्लोककी व्याख्या संगति-पूर्वक करनी पड़ेगी।

'बहुश्रुताः'

मौलाञ्छास्त्रविदः शूरांल्लब्धलक्षान् कुलोद्भवान् ।
सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥

'मनु०'

'जो लोग शास्त्रज्ञाता, शूर-वीर, बातकी तहतक पहुंचने वाले, उत्तम-कुलवान हों, उनकी परीक्षा लेकर राजा उनको मंत्री बनावे।' इस श्लोकमें मनुने भी बहुश्रुत अर्थात् बहु-ज्ञताकी आवश्यकता समझी। ज्ञान बिना मंत्री क्या राय दे सकता या कार्य कर सकता है? बहुज्ञता बिना मंत्री अन्धेकी भांति होता है। अतः मंत्री बहुत-बड़ा विद्वान् होना चाहिए। मनुने वीरताकी योग्यता भी मंत्रीमें आव-श्यक समझी है, अतः वाल्मीकिने अपने श्लोकमें उसकी व्याख्या करते हुए 'शस्त्रज्ञ' शब्द रखा है अर्थात् वह मंत्री सैनिक-शिक्षा सम्यक्तया प्राप्त कर चुका हो। आवश्यकता पड़नेपर शस्त्रास्त्र चलानेका भी कार्य कर सके।

'नीति-मन्तः'

शुक्रनीति, चाणक्य-नीति, कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र आदि ग्रन्थोंका ज्ञाता और वैदेशिक-नीतिमें भी विचक्षण हो। मंत्री व्युत्पन्न-मतिवाला होना चाहिए। समयकी गति-विधिका पारखी होना चाहिए। चाणक्य, बृहस्पति और कृष्णकी बुद्धि कौशल्य वह रखता हो। इसलिए वाल्मीकिने मंत्रियोंको नीतिमान होना चाहिए, ऐसा उपदेश दिया है।

'श्रीमन्तः'

मंत्रियोंको श्रीमान् होना चाहिए। लक्ष्मीवान तो सभी हो सकते हैं। परन्तु मंत्रीको श्रीमान होना चाहिए। जो लक्ष्मीवान् अपने धनको सन्मार्गमें खर्च करता है, वही श्रीमान् होता है। उसका धन जनताके योग और क्षेममें समय समय पर काम आता है। उसका धन इन्द्रिय-लोलुपता और फैशन-परस्तीमें नहीं खर्च होता। अतः उसे श्रीमान कहते हैं।

'महात्मानः'

मंत्रीको महात्माओंके चरित्रोंका पालन करनेवाला होना चाहिए। यदि महात्मा गांधीके उज्ज्वल आदर्शोंपर चलने-वाले हों तो सोनेमें सुगन्धी है। इनका आत्मिकबल इन्हें सदा सन्मार्ग पर प्रेरित करता रहता है। ये अपने संयम और सदाचारसे जनताके पथ-प्रदर्शक होते हैं। ये प्रथम अपने पर शासन करते हैं, तब प्रजापर शासन करते हैं। ये कथनीकी पुष्टि करनीसे करते हैं। केवल परोपदेश कुशल ही नहीं होते। इनका नैतिक-जीवन ऊंचा होता है।

'दृढ-विक्रमाः'

मानसिक, शारीरिक और आत्मिक शक्तियोंसे मंत्रीको युक्त होना चाहिए। इनके अन्दर शक्ति होनी चाहिए।

जनताकी मुसीबतमें हर समय उसकी सहायता करनेकी क्षमता रखते हों। उनके बीचमें पैदल घूम कर गर्मी, सर्दी, बरसातको सह कर उनकी वास्तविक सहायता कर सकें।

'परस्परानुरक्ताश्च'

एक मंत्री दूसरे मंत्रीसे अनुराग रखता हो। आपसमें द्वेष और ईर्ष्याकी भावना न रखता हो। तभी सबका समान मन, समान-विचार, समान-उद्देश्य और समान-भोग हो सकता है। यदि मंत्रियोंमें परस्पर अनुराग नहीं रहता, तो सभाओंमें वाक्-वादमें समय बीतता है और दो दिनमें तय होनेवाली बात वर्षोंमें तय होती है। मंत्रियोंकी कलुषित-बुद्धि आपसमें छिद्रान्वेषणमें ही रत रहती है। अतः सूक्ष्म-दर्शी आदि कवि भगवान् वाल्मीकिने मंत्रियोंको आपसमें अनुरक्त रहनेकी सलाह दी है।

कीर्तिमन्तः प्रणिहिताः यथावचनकारिणः।
तेजःक्षमायशःप्राप्ताः स्मितपूर्वाभिभाषिणः ॥ ३ ॥

'मंत्रीको कीर्ति-श्री भी प्राप्त होनी चाहिये। अपकीर्ति-वाला मंत्री प्रजाके श्रद्धाका पात्र नहीं होता और प्रजा शासन से मनमें घृणा करने लगती है। मंत्रीकी कथनी और करनी-में अन्तर नहीं होना चाहिए। जनताका हित उसका ध्येय होना चाहिए। मंत्री मुस्कराते हुए जनतासे व्यवहार करें, अपना रुद्र-रूप जनताके समक्ष उपस्थित न करे।'

क्रोधात् कामार्थहेतोर्वा न ब्रूयुरनृतं वचः।
तेषामविदितं किञ्चित् स्वेषु नास्ति परेषु वा ॥४॥

"मंत्री, क्रोधावेशमें, कामके वशमें होकर अथवा अन्य कारणोंसे असत्य न बोले। मंत्रीको राष्ट्रकी सभी बातें सम्यक ज्ञात होनी चाहिए। कुशल-मंत्री अपने तथा गैरोंकी सभी रहस्य-मयी बातोंको भली प्रकार जानता है।" अपने उक्त गुणोंसे ही प्रजाका हित और उसका अनुरंजन करता है। वह मित्र और शत्रुके साथ न्यायोचित व्यवहार करनेमें समर्थ होता है। व्यवहार-कुशलता मंत्रीको सभी क्षेत्रोंमें सफल बनाती है। मंत्रीके व्यवहारमें छल नहीं होता। क्योंकि छल-युक्त व्यवहार ही धूर्तता है। मंत्री धूर्ततासे परे होता है।

प्राप्त- कालं यथा दण्डं धारयेयुः सुतेष्वपि।
कोश--संग्रहे युक्तश्च बलस्य च परिग्रहे ॥

"मंत्रीको दण्ड-विधान भी जानना चाहिए। न्यायके समक्ष मंत्रीको जनहितकी रक्षा करते हुए अपने पुत्रको भी समुचित दण्ड देना चाहिये। मंत्री राष्ट्रके कोशको भी समृद्ध करता रहे। उसे अपनी सर्वतोन्मुखी शक्तियोंके विकासमें सचेष्ट रहना चाहिए।" अपने और पड़ोसी राष्ट्र की शक्तिका उसे सम्यक् ज्ञान होना चाहिए।

अहितं वापि पुरुषं न हिंस्युरविदूषकम्।
वीराश्च नियतोत्साहाः राजशास्त्रमनुष्ठिताः ॥ ६ ॥

"मंत्री सज्जनोंसे कभी भी कटु वाक्य न कहे और न उनका कभी अहित ही करे। सर्वदा उत्साह-युक्त और वीर-भावनाओंसे उल्लसित रहे। राजनीति-शास्त्रके कर्तव्योंका सदा अनुष्ठान करें।"

शुचीनां रक्षितारश्च नित्यं विषयवासिनाम्।
ब्रह्मक्षत्रमहिंसन्तस्ते कोशं समपूरयन् ॥ ७ ॥

"जो पवित्र विषय-वासनावाले प्रजागण हैं उनकी सदा रक्षा करता रहे और जो अपवित्र अर्थात मर्यादा-हीन विषय वासनावाले हैं उन्हें सुधारता रहे। शिक्षा और रक्षा-विभाग को सुरक्षित रखते हुए राष्ट्रके कोशको परिपूर्ण रखे. अन्यथा राष्ट्रका आधार कागजकी नाव ही होगा।'

सुतीक्ष्णदण्डाः संप्रेक्ष्य पुरुषस्य बलाबलम्।
शुचीनामेकबुद्धीनां सर्वेषां संप्रजानताम् ॥ ८ ॥

"मंत्री मनुष्योंकी शक्तिका विचार करके उन्हें कोमल अथवा तीक्ष्ण दण्ड देवे। क्योंकि पवित्र आचरणवाले बुद्धिमानोंने इसी प्रकार व्यवस्था की है।" यदि मंत्री अथवा राजा दण्डका अनुचित प्रयोग करता है, तो प्रजा तथा राष्ट्रका अहित होता है।

समीक्ष्य स धृतः सम्यक्सर्वाः रञ्जयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः ॥
मनुस्मृति

हितार्थाश्च नरेन्द्रस्य जाग्रतो नय-चक्षुषा।
गुरोर्गुणगृहीताश्च प्रख्याताश्च पराक्रमैः ॥ ९ ॥

'न्यायकी आंखोंसे जागते हुये राष्ट्र-पतिके हितमें लगे हुए मंत्रि-गण अपने पराक्रमोंसे प्रसिद्ध होते हैं और वे विद्वानोंके गुणोंको सतत ग्रहण करते हैं।' क्योंकि मानव गुण-ग्राही होता हुआ ही अपनेको अनुभवोंसे परि-पूर्ण करता है।

विदेशेष्वपि विज्ञाताः सर्वतो बुद्धि-निश्चयाः ।
अभितो गुणवन्तश्च न चासन् गुण-वर्जिताः ॥१०॥

'मंत्रियोंको अपनी विशेष योग्यता द्वारा देश-विदेशमें सुख्याति प्राप्त होनी चाहिए। और उनमें सब प्रकारकी बुद्धियाँ होनी चाहिए। सभी प्रकारके गुणोंसे उन्हें युक्त होना चाहिए।' राष्ट्रमें गुण-विहीन मंत्री नहीं होने चाहिए। जनताको चाहिए कि मत-दान करते समय इस कसौटीको हाथमें रखे। पार्टीके दल-दलसे ऊपर उठकर राष्ट्र-हितको दृष्टिमें रखे।

सन्धि-विग्रहतत्वज्ञाः प्रकृत्या सम्पदान्विताः ।
यन्त्र-संवरणे शक्ताः श्लक्ष्णाः सूक्ष्मासु बुद्धिषु ११

'मंत्रियोंको संधि, विग्रह, यान, द्वैधीभाव, साम, दाम, दण्ड, भेद आदि विषयोंके तत्वोंका भली प्रकार जानना चाहिए। उनके पास स्वभावतः सम्पूर्ण सम्पत्ति होनी चाहिए। यन्त्रोंके संवरणमें उन्हें समर्थ होना चाहिए। उन्हें कुशाग्र-बुद्धिका होना चाहिए।' आकृति और चेष्टासे ही विपक्षीके भावोंको अवगत करनेकी क्षमता होनी चाहिए।

प्रजानां पालनं कुर्वन्नधर्मं परिवर्जयन् ।
विश्रुतास्त्रिषु लोकेषु वदान्यः सत्यसंगरः ॥ १२ ॥

'मंत्रियोंको अपने कर्तव्यपर आरूढ रहना चाहिए। प्रजाको सर्वदा धर्म-मार्गपर चलाना चाहिए। अपने सद्-गुणोंसे उन्हें जनता द्वारा ख्याति प्राप्ति करनी चाहिए। सत्यके विजयके लिए ही उन्हें युद्ध करना चाहिए।' कृतज्ञ और उदार होकर राष्ट्रके कार्योंका सञ्चालन करना चाहिए। मनसा, वाचा तथा कर्मणा उन्हें राष्ट्र-भक्त होना चाहिए।

आदर्श गुप्त-चरमण्डल और दूत

गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति वै द्विजाः ।
चारैः पश्यन्ति राजानः चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥

'गायें गन्धके द्वारा, विद्वान् ज्ञानके द्वारा, राजा गुप्त-चरोंके द्वारा और साधारण जन आंखोंसे देखते हैं।' इस प्रकार राष्ट्रमें गुप्त-चरोंका स्थान महत्वपूर्ण है। आज कल तो सर्वत्र गुप्तचरोंका जाल बिछा रहता है। राष्ट्रकी सुरक्षा इनपर बहुत कुछ निर्भर करती है। इनके गुणोंका उल्लेख मनुजीने इस प्रकार किया है—

अनुरक्ताः शुचिर्दक्षाः स्मृतिमान् देश-काल-वित् ।
वपुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते ॥

'गुप्तचर अथवा दूतको राष्ट्र-भक्तिकी भावनाओंसे ओत-प्रोत होना चाहिए। आचरणसे पवित्र और नीति-दक्ष होना चाहिए। देश-कालकी स्थितिका ज्ञाता, और स्मरण-शक्तिसे युक्त होना चाहिए। इन्हें कई भाषाओंका पूर्ण-ज्ञान होना चाहिए। वाक्-पटुता इनमें कूटकूटकर भरी होनी चाहिए। इनके अन्दर भयका नाम भी नहीं होना चाहिए।'

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम् ।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयः ॥

'वाल्मीकि'

'हनुमानमें वीरता, निपुणता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, न्यायका साधन, शक्ति, प्रभाव आदि गुण मौजूद थे।' दूतोंमें भी इन गुणोंका सन्निवेश होना चाहिए। क्योंकि दूतोंको कभी बडे धैर्य तथा बुद्धिमत्तासे कार्य करना पडता है। नैतिकता और बुद्धि-मानोंमें वरिष्ठता तो दूतोंके प्रधान गुण हैं।

दूतः एव हि सन्धत्ते भिनत्त्येव स संहतान् ।
दूतस्तत् कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन मानवाः ॥ 'मनु'

'दूत ही पराराष्ट्रोंसे संधि और संधि-भंगका कार्य करते हैं। दूत ऐसे कार्य करते हैं जिससे शत्रु-पक्षके मनुष्योंमें फूट पड जाय।' राष्ट्र-पतिके द्वारा दूतोंके ऊपर विदेशोंमें विशेष कार्य-भार दिया जाता है। वे अपने आदर्शों और व्यक्ति-त्वके प्रभावसे और नीति-नैपुण्यसे राष्ट्रके सभी कार्योंका वहन करते हैं।

भूताश्चार्था विपद्यन्ते देश-कालविरोधिताः ।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥ १ ॥
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते ।
घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ॥ २ ॥

"उक्त वाक्य हनुमानजीके हैं। जब कि वे लङ्कामें सीता-जीको खोजने गये थे। जब उन्होंने लङ्कामें प्रवेश किया तो सोचने लगे कि महारानीसे अकेले मिलें या सबके सामने। हनुमानजीका उद्देश्य तो भगवान रामका कार्य सम्पादन था। उक्त भावनाओंमें पडे हुए हनुमानजीने उक्त श्लोकोंके द्वारा दूतोंकी विशिष्टता पर प्रकाश डाला। "जब दूत

अनेक मार्गोंमेंसे एक मार्गके चयनमें हतप्रभ होजाता है तो राष्ट्रके सारे कार्य और प्राणी देश-काल और समयके विपरीत पड कर विपत्तिमें पड जाते हैं, जिस प्रकार सूर्यके उदय होने पर अन्धकार नष्ट भ्रष्ट होता है। "

" दूतकी निश्चयात्मक-बुद्धि होनी चाहिए। यदि एक मुख्य कार्यके सम्पादनमें, दूतकी बुद्धि अनिश्चित और गौण कार्योंके सम्पादनमें फंस जाती है तो दूतकी बुद्धि शोभनीय नहीं होती। क्योंकि पण्डितमानी दूत राष्ट्रके कार्योंको नष्ट करनेवाले होते हैं। " इस प्रकार यहां संक्षेपमें गुप्तचरों और दूतोंके कार्योंका उल्लेख किया गया।

जिस राष्ट्रमें ऐसे गुप्तचर और दूत होते है वह राष्ट्र दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति करता है। पर-राष्ट्रनीति कभी भी उसकी असफल नहीं होती। दुर्भाग्यसे जिस राष्ट्रके दूत और गुप्त-चर राष्ट्र-भक्तिसे शून्य, अर्थ और कामके दास होते हैं, वे राष्ट्रके सम्मानको दफनाकर उसकी मिट्टी पलीद कर देते हैं। भारतको अपने गुप्त-चरों और दूतों पर अभिमान है। यही कारण है कि हमारा राष्ट्र बडीसे बडी विपत्तियोंका मुकाबला करके उन्नतिकी तरफ अग्रसर हो रहा है। हमारे देशके दूतों और गुप्त-चरो पर राम, कृष्ण, हनुमान् और गांधीजी ऐसी महात्माओंका प्रभाव है।

राष्ट्रपति की योग्यता

मनुके वचनानुसार राष्ट्र-पति अपने राष्ट्रमें योग और क्षेम द्वारा प्रजाका समुत्थान करे।

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया।
रक्षितं वर्धयेद् वृद्ध्या वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥

" राष्ट्र-पति अलब्ध वस्तुकी प्राप्ति या अलब्ध राज्यकी प्राप्ति दण्ड द्वारा करे, इसीको योग कहते हैं और प्राप्त-वस्तु अथवा राज्यकी रक्षा देख-भालके द्वारा करे, इसीको क्षेम कहते हैं। रक्षित राज्य और धनका उपयोग सत्पात्रों, विद्यादि धर्मके प्रचार-कार्योंमें करे। " देशकी योजनाओंमें लगावे। यह सब कार्य तभी हो सकता है जब कि शासनकी आन्तरिक-शक्ति दृढ हो।

राष्ट्रकी आन्तरिक शक्ति दृढ-राष्ट्रीयता है। दृढ-राष्ट्रीयता न्याय और नैतिकता पर आधारित है। न्याय और नैतिकता शासक-वर्ग पर निर्भर है। शासक-वर्गकी न्याय और राष्ट्रभक्ति अलोभ पर आश्रित है। अलोभ धनकी नश्वरताकी भावनापर अवलम्बित है। धनकी नश्वरताकी भावना उत्तम-सादगी और ज्ञान-निष्ठा पर आधारित है। ज्ञानका मूल सुशिक्षा है। सुशिक्षा राष्ट्र और अध्यापकोंके द्वारा ही दी जासकती है। सुशिक्षाके द्वारा ही स्वस्थशासक वर्गका निर्माण किया जासकता है। इस प्रकार राष्ट्रमें योग और क्षेम तभी स्थापित हो सकते हैं जब कि अन्तरङ्ग शक्ति सेना, मंत्रिमण्डल, दूत और गुप्त-चर मण्डल अपनी अपनी जगह कृत-कार्य हो। नहीं तो तुलसीदासके वचनोंमें—

जासु राज्य प्रिय-प्रजा दुःखारी।
सो नृप अवश नरक अधिकारी ॥

" जिस शासक वर्गके प्रबन्धसे जनता दुःखित है, वह शासक वर्ग अपने राष्ट्र-पति सहित जनताकी क्रान्ति द्वारा पद-च्युत करनेके योग्य है। तभी तो—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम-राज्य काहु नहि व्यापा। और तभी राष्ट्र-पति उद्घोष कर सकता है कि—

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥

[क्रमशः]

पुरुष प्रजापति

[डॉ॰ श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल, हिंदुविश्वविद्यालय, काशी]

भगवान् वेदव्यासका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वचन है, जो उनके समस्त ज्ञान-विज्ञानका मथा हुआ मक्खन कहा जा सकता है। उन्होंने लिखा है—

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि
नहि मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।

'जो गुह्य तत्त्वज्ञान है, जो अव्यक्त ब्रह्मके समान सर्वोपरि और सर्वव्याप्त अनुभव है, वह मैं तुमसे कहता हूँ— मनुष्यसे श्रेष्ठ और कुछ नहीं है।'

सचमुच अनंत शाखा-प्रशाखाओंसे वेदका गुह्य संदेश यही है कि प्रजापतिकी सृष्टिमें मनुष्य प्रजापतिके निकटतम है। शतपथ ब्राह्मणमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा है—

पुरुषो वै प्रजापतेर्नेदिष्ठम्। (शत० ४।३।४।३)

'पुरुष प्रजापतिके निकटतम है।' निकटतमका तात्पर्य यही है कि वह प्रजापतिकी सच्ची प्रतिमा है, प्रजापतिका तद्वत् रूप है। प्रजापति और उसके बीचमें ऐसा ही सान्निध्य और घनिष्ठ सम्बन्ध है, जैसा प्रतिरूप अर्थात् असल रूप और अनुकृतिमें होता है। प्रजापति मूल है, तो पुरुष उसकी ठीक प्रतिकृति है। प्रजापतिके रूपको देखना और समझना चाहें, तो उसके सारे नक्शोंको इस पुरुषमें देख और समझ सकते हैं। सत्य तो यह है कि पुरुष प्रजापतिके इतना नेदिष्ठ या निकटतम या अंतरंग है कि विचार करनेपर यही अनुभव होता है और यही मुँहसे निकल पड़ता है कि पुरुष प्रजापति ही है—

पुरुषः प्रजापतिः। (शत. ६।२।१।२३)

जो प्रजापतिके स्वरूपका ठाठ या मानचित्र है, हूबहू वही पुरुषमें आया हुआ है। इसलिए यदि सूत्ररूपमें पुरुषके स्वरूपकी परिभाषा बनाना चाहें, तो वैदिक शब्दोंमें कह सकते हैं—

प्राजापत्यो वै पुरुषः। (तैत्ति० २।२।५।३)

किन्तु यहां एक प्रश्न होता है। पुरुष साढ़े तीन हाथ परिमाणके शरीरमें सीमित है, जिसे बादके कवियोंने—

अहुठ हाथ तन सरवर
हिया कँवल तेहि माँहि,

इस रूपमें कहा है, अर्थात् 'साढ़े तीन हाथका शरीर एक सरोवरके समान है, जो जीवनरूपी जलसे भरा हुआ है और जिसमें हृदयरूपी कमल खिला हुआ है।' जिस प्रकार कमल सूर्यके दर्शनसे, सहस्ररश्मि सूर्यके आलोकसे विकसित होता या खिलता है, उसी प्रकार पुरुषरूपी यह प्रजापति इस विश्वात्मा महाप्रजापतिके आलोकसे विकसित और अनुप्राणित है। प्रजापति आतप है तो यह पुरुष उसकी छाया है। जबतक प्रजापतिके साथ पुरुषका यह संबंध दृढ़ है, तभीतक पुरुषका जीवन है। प्रजापतिके बलका ग्रन्थि-बन्धन ही पुरुष या मानवके हृदयकी शक्ति है। जो समस्त विश्वमें फैला हुआ है, विश्व जिसमें प्रतिष्ठित है और जो विश्वमें ओत-प्रोत है, उस महाप्रजापतिको वैदिक भाषामें सकेत रूपसे '**सहस्र**' कहा जाता है। वह सहस्रात्मा प्रजापति ही वैदिक परिभाषामें '**वन**' भी कहलाता है। उस अनन्तानन्त '**वन**' के भीतर एक-एक विश्व एक-एक अश्वत्थ वृक्षके समान है। इस प्रकारके अनन्त अश्वत्थ उस सहस्रात्मा 'वन' नामक प्रजापतिमें हैं। उसके केन्द्रकी जो धारा सृष्ट्युन्मुख होकर प्रवृत्त होती है, उसी मूल केन्द्रसे केन्द्रपरम्परा विकसित होती हुई पुरुषतक आती है। केन्द्रोंके इस वितानमें पूर्वकेन्द्रकी प्रतिमा या प्रतिबिम्ब उत्तरके केन्द्रमें आता है। इस प्रकार जो सहस्रात्मा प्रजापति है, वही मूलके तूलमें आता हुआ ठीक-ठीक अपने सम्पूर्ण स्वरूपके साथ इस पुरुषमें अवतीर्ण होता है और हो रहा है। वैदिक महर्षियोंने ध्यानयोगानुगत होकर इस महान्

तत्त्वका साक्षात्कार किया और सृष्टि-परम्पराका विचार करते हुए उन्हें यह साक्षात् अनुभव हुआ कि यह जो पुरुष है, वह उसी सहस्रात्मा प्रजापतिकी सच्ची प्रतिमा है—

पुरुषो वै सहस्रस्य प्रतिमा। (शत. ७।५।२।१७)

जो सहस्र प्रजापति है, उसीके अनन्त अव्यक्त स्वरूपमें किन्हीं अचिन्त्य अप्रतर्क्य-बलोंके संघर्षणसे या ग्रंथिबंधनसे या स्पन्दनसे सृष्टिकी प्रक्रिया प्रवृत्त होती है। किसी भी प्रकारकी शक्ति या वेग हो, उसके लिए बलग्रन्थि आवश्यक है। बिना बलग्रन्थिके अव्यक्त व्यक्तभावमें, अमूर्त मूर्तरूपमें आ नहीं सकता। शुद्ध रसरूप प्रजापतिमें अमित-भावकी प्रधानता है, उसमें जबतक मितभावका उदय न हो, तबतक सृष्टिकी सम्भावना नहीं होती। प्रजापतिके केन्द्रसे रसका वितान या विस्तार होता है, वह यदि बाहर-की ओर ही फैलता जाए तो कोई ग्रन्थि-सृष्टि संभव नहीं।

वह रस परिधिकी ओर फैलकर जब बलके रूपमें केन्द्रकी ओर लौटता है, तब द्विविरुद्ध भावोंकी टक्करसे स्थिति और गति या गति और अगतिरूप स्पन्दनका चक्र जन्म लेता है। स्पन्दनका नाम प्रजापति है। स्पन्दनको वैदिक परिभाषामें छन्द कहते हैं। जो छन्द, वही प्रजापति है। किसी भी प्रकारकी फड़कनका नाम छन्द है। सारे विश्वमें द्विविरुद्ध भावसे समुत्पन्न जहां जहां छन्द या फड़कन है, वहीं प्रजापतिके स्वरूपका तारतम्य दृष्टिगोचर होता है। अतएव यह महान् सत्य सूत्ररूपमें इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

प्रजापतिरेव छन्दोऽभवत्। (शत. ८।२।३।१०)

सृष्टिकी महती प्रक्रियाके अनेक लोकोंमें अनेक स्तरोंपर प्रजापतिके इस छन्दकी अभिव्यक्ति हो रही है। इसी छन्दोवितानमें सहस्रात्मा प्रजापति पुरुषरूपमें अभिव्यक्त होता है। सूर्य भी उसी केन्द्रपरम्पराका एक बिन्दु है। ऐसे पूर्वयुगकी कल्पना करें, जब सब कुछ तमोभूत था, अलक्षण था और अप्रज्ञात था। इस समय रस और बलके तारतम्यसे जो शक्तिका संघर्षण होने लगा, उसी संघर्षणके फलस्वरूप ज्योतिष्मान् महान् आदित्योंका जन्म हुआ। वैज्ञानिक भाषामें इसीको यों सोचा और कहा जा सकता है कि आरम्भमें शक्तिके समान- वितरणके फलस्वरूप एक शान्त समुद्र भरा हुआ था। शक्तिके इस शांत सागरमें न कोई तरंग थी, न क्षोभ था। किन्तु न जाने कहांसे, कैसे, क्यों और कब उसमें तरंगोंका स्पन्दन आरम्भ हुआ और इस संघर्षके फलस्वरूप जो शक्ति समरूपमें फैली हुई थी, उसमें केन्द्र या बिन्दु उत्पन्न होने लगे, जो कि प्रकाश और तेजके पुञ्ज बन गये।

इस प्रकारके न जाने कितने सूर्य शक्तिकी उस प्राक्का-लीन गर्भित-अवस्थामें उत्पन्न हुए। वैदिकभाषामें व्यक्तकी संज्ञा हिरण्य है। और अव्यक्त-अवस्था हिरण्यगर्भ अवस्था थी। समभावसे वितरित शक्तिकी पूर्वावस्था वही हिरण्यगर्भ अवस्था थी, जिसमें यह व्यक्त हिरण्यभाव समाया हुआ था। आगेका व्यक्तभाव उसी पूर्वके अव्यक्त-में लीन था।

यदि सदा कालतक शक्तिकी वही साम्यावस्था बनी रहती, तो किसी प्रकारका व्यक्तभाव उत्पन्न ही न होता। शक्ति-के वैषम्यसे ही महान् आदित्य जैसे केन्द्र या बिन्दु इस शान्त शक्ति-समुद्रमें उत्पन्न होने लगे। पहिली शान्त अवस्थाके लिए वेदमें संयती शब्द है और दूसरी व्यक्त-भावापन्न क्षुब्ध अवस्थाके लिए क्रन्दसी शब्द है। संयती शान्त आत्मा है। क्रन्दसी क्षुभित आत्मा है। शक्तिके उस समुद्रमें जो क्षुभितकेन्द्र उत्पन्न हुए, उन्हींकी संज्ञा सूर्य हुई। हमारे सौर-मण्डलका सूर्य भी उन्हींमेंसे एक है। प्रत्येक आदित्य या सूर्य सहस्रात्मा प्रजापतिकी प्रतिमा है और वह ऐसी प्रतिमा है जो विश्वरूप है, जिसमें सब रूपोंकी समष्टि है, जिसके मूल केन्द्रसे सब रूपोंका निर्माण होता है। उसीके लिए कहा है—

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि
सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्। (यजु. १३।४१)

शक्तिके शान्त महासमुद्रमें जो आदित्य उत्पन्न हुआ, वह प्रजापतिका शिशुरूप था। उसके पोषणके लिए पय या दुग्धकी आवश्यकता थी। वह कौनसा पय था, जिसने उस आदित्यको पुष्ट किया? ब्राह्मणोंकी परिभाषाके अनुसार प्राण ही वह पय या दुग्ध है, जिससे आदित्यरूप इस शिशुका संवर्धन होता है। विराट् प्रकृतिमें सौरप्राणात्मक स्पन्दन या प्राणनक्रियाके द्वारा ही वह विश्वरूप आदित्य जीवनयुक्त है अर्थात् स्वस्वरूपमें स्थित है। वह अपनेसे ही पूर्वकी कारण परम्पराओंका पूर्णतम प्रतिनिधि है। इसी

लिए इसे सहस्रकी प्रतिमा कहा गया है। हमारा जो दृश्यमान् सूर्य है, वह उन्हीं महान् आदित्योंकी केन्द्रपरम्परामें एक विशिष्ट केन्द्र है अथवा उनकी तुलनामें वह शिशुमात्र है। इसीलिए वैदिक भाषामें—

द्रप्सश्चस्कन्द

कहा जाता है। अर्थात् शक्तिके उस पारावार-हीन महासमुद्रमें जो शक्तिका प्रज्वलित केन्द्र उत्पन्न हुआ, वह इस प्रकार था, जैसे समुद्रसे एक जलबिन्दु चू पड़ा हो। वह महासमुद्र जो कि बाष्परूपमें था अथवा अव्यक्त था, उसीमेंसे यह एक द्रप्स या बिन्दु व्यक्तभावको प्राप्त हो गया है। यही वैदिककाव्यकी भाषा है और यही विज्ञानकी भाषा है। सब प्रकारकी सीमाओंसे ऊपर, सब प्रकारके गणितीय निर्देशोंसे परे जो शक्तितत्त्व है, जहां किसी प्रकारके अंकोंका संस्पर्श नहीं होता, जिसके लिए शून्य या पूर्ण ही एकमात्र प्रतीक है, उस अनन्त संज्ञक पूर्णमेंसे यह प्रत्यक्ष आदित्यरूपी एक बिन्दु प्रकट हुआ है और इसकी संज्ञा भी पूर्ण है। वह अदस् है, यह इदम् है। वह भी पूर्ण है, यह भी पूर्ण है। इस प्रकारकी रहस्यमयी भाषा सृष्टिसे प्राक्कालीन अचिन्त्य और अव्यक्ततत्त्वोंके लिए विज्ञान और वेद दोनोंमें समानरूपसे प्रयुक्त होती है।

प्रकृतमें हमारा लक्ष्य इसी पर है कि उस अनन्त प्रजापतिके छंदसे ही पुरुषका निर्माण हुआ है। उस सहस्रात्मा प्रजापतिकी साक्षात् प्रतिमा पुरुष या मानव है। रस और बलके तारतम्यसे पुरुष, अश्व, गौ, अज, अवि ये पांच मुख्य पशु प्रकृतिमें प्राणदेवताओंके प्रतिनिधिरूपसे चुन लिए गए हैं, यद्यपि समस्त पशुओंकी संख्या अनन्तानन्त है। वैदिक परिभाषाके अनुसार जो भूतसृष्टि है, उसीकी संज्ञा पशु या प्रजा है। यह भूतसृष्टि तीन प्रकारकी है—

१ असंज्ञ– जैसे पाषाण आदि,
२ अन्तःसंज्ञ– जैसे वृक्ष आदि,
३ ससंज्ञ– जैसे पुरुष, पशु आदि।

इन तीनोंमें यह प्रातिस्विक भेद क्यों है? यह पृथक् विचारका विषय है। संक्षेपमें असंज्ञ सृष्टिमें केवल अर्थमात्राकी अभिव्यक्ति है। अन्तःसंज्ञ सृष्टिमें अर्थमात्रा और प्राणमात्रा दोनोंकी अभिव्यक्ति है और ससंज्ञ प्राणियोंमें अर्थ या भूतमात्रा, प्राणमात्रा एवं मनोमात्रा– इन तीनोंकी अभिव्यक्ति होती है। इन्हें ही भूतात्मा, प्राणात्मा और प्रज्ञानात्मा भी कहते हैं। प्रज्ञानात्मक जो सौर प्राण है, उसे ही इन्द्र कहते हैं। मानव या मनुष्यमें इस सौर इन्द्रतत्त्वकी सबसे अधिक अभिव्यक्ति है। अन्तःसंज्ञ वृक्ष–वनस्पतियोंमें वह प्रज्ञानात्मा इन्द्र मूर्छित रहता है। उनमें केवल प्राणात्मा या तैजस् आत्माका विकास होता है। जहां तेज या प्राण है, वहीं विकास है। बीज जब पृथिवीमें जल, मिट्टी एवं पृथिवीकी उष्णताके सम्पर्कमें आता है, तत्क्षण उसमें विकासकी प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। अतएव उपनिषदोंमें कहा गया है कि जो तैजस् आत्मा है वह वृक्ष-वनस्पतियोंमें भी है, किन्तु प्रज्ञानात्माका विकास केवल मानवमें होता है। इस दृष्टिसे मानव समस्त विश्वमें अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

जिस प्रकार प्रजापति वाक्, प्राण, मनकी समष्टि है, वैसे ही मानव भी वाक्, प्राण और मन तीनोंकी समष्टिका नाम है। अर्थ या स्थूल भूतमात्राको वैदिक परिभाषामें वाक् कहते हैं। पंचभूतोंमें आकाश सबसे सूक्ष्म होनेके कारण सबका प्रतीक है और वाक् आकाशका गुण है। अतएव वाक्से उपलक्षित स्थूल भूतमात्रा या अर्थमात्राका ग्रहण किया जाता है। मानवका शरीर यही भाग है। इसके भीतर क्रियारूप प्राणात्माका निवास है और उसके भी अभ्यन्तरमें मनोमय प्रज्ञानात्माका निवास है। मनकी ही संज्ञा प्रज्ञान है।

इस प्रकार प्रजापति और मानव इन दोनोंमें रूप-प्रतिरूप या बिम्ब-प्रतिबिम्बभावका संबंध है। पुरुष प्रजापतिकी सच्ची प्रतिमा है, इसका यह अर्थ भी है कि जिस प्रकार प्रजापति त्रिपुरुष पुरुष है, उसी प्रकार यह मनुष्य भी है। त्रिपुरुष पुरुषका तात्पर्य यह है कि प्रजापति नामक संस्थाका निर्माण अव्यय, अक्षर और क्षर इन तीन तत्त्वोंकी समष्टिके रूपमें होता है। इनमेंसे अव्यय दोनोंका आलम्बन या प्रतिष्ठारूप धरातल है, अक्षर निमित्त है और क्षर उपादान है। अव्यय प्रजापतिसे मन, अक्षरसे प्राण और क्षरसे शरीर भागका निर्माण होता है। इस प्रकार जो प्रजापति है, वही पुरुष है और पुरुषको प्राजापत्य कहना सर्वथा समीचीन है।

वैदिक दृष्टिके अनुसार पुरुष दीन-हीन दासानुदास या शरणागत प्राणी नहीं है, वह है प्रजापतिके निकटतम उसकी साक्षात् प्रतिमा। सहस्रात्मा प्रजापतिका जो केन्द्र था,

उसीकी परम्परामें पुरुष-प्रजापतिके केन्द्रका भी विकास होता है। जो सहस्रके केन्द्रकी महिमा थी, वही पुरुषके केन्द्रकी भी है। सहस्रात्मा अश्वसंज्ञक प्रजापतिका केन्द्र प्रत्येक अश्वत्थ-संज्ञक प्रजापतिमें होता है और वही विकसित होता हुआ प्रत्येक सूर्यमें और प्रत्येक मानवमें अभिव्यक्त होता है। इसीलिए कहा जाता है कि जो पुरुष सूर्यमें है, वही मानवमें है। वैदिक भाषामें केन्द्रको ही हृदय कहते हैं। केन्द्रको ही ऊर्ध्व और नाभि भी कहा जाता है। केन्द्र ऊर्ध्व और उसकी परिधि अधः है। चक्रकी नाभि उसका केन्द्र और उसकी नेमि उसका बाह्य या महिमा भाग है। केन्द्रसे चारों ओर रश्मियोंका वितान होता है। केन्द्रको उक्थ भी कहते हैं, क्योंकि इस केन्द्रसे चारों ओर रश्मियाँ उत्पन्न होती और फैलती हैं। इन रश्मियोंको उक्थकी सापेक्षतासे अर्क कहा जाता है। जिस प्रकार सूर्यसे सहस्रों रश्मियाँ चारों ओर फैलती हैं और फिर एक-एकसे सहस्र सहस्र होकर बिखर जाती हैं, यहाँतक कि तनिक-सा भी स्थान उनसे विरहित या शून्य नहीं रह जाता और उनकी एक चादर- जैसी सारे विश्वमें फैल जाती है, वैसे ही पुरुषके केन्द्र या उक्थसे अर्क या रश्मियोंका विकास होता है-

सहस्रधा महिमानः सहस्रम्।

अर्थात् केन्द्रकी महिमा सहस्ररूपसे व्यक्त होती है और फिर उसकी रश्मियाँ सहस्र-सहस्र रूपसे बँट जाती हैं। जहाँ केन्द्र और परिधिकी संस्था है, वहाँ सर्वत्र यही वैज्ञानिक नियम कार्य करता है। इस प्रकार जो पुरुषका आत्म-केन्द्र हृदय है, वह विश्वात्मा सहस्र या प्रजापतिका ही अत्यंत विलक्षण और रहस्यमय प्रतिबिम्ब है। ऐसा यह पुरुष प्रजापतिकी महिमासे महान् है। साढे तीन हाथके शरीरमें परिमित होते हुए भी यह त्रिविक्रम विष्णुके समान विराट् है। गीतामें जो कहा है '**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**' वह इसी तत्त्वकी व्याख्या है। वैदिक दृष्टिकोणमें सन्देह और अनास्थाका स्थान ही नहीं है। यहाँ तो जो पूर्ण पुरुष है, जो समस्त विश्वमें भरा हुआ है, वही पुरुषके केन्द्र या हृदयमें भी प्रकट हो रहा है। वह पुरुष वामन भी कहा जाता है। विराट् प्राणकी अपेक्षा सचमुच वह वामन है। यह जो मानवके केन्द्र या हृदयमें वामनमूर्ति भगवान् है इसे ही व्यानप्राण भी कहा जाता है। जो प्राण और अपान इन दोनोंको संचालित करता और जीवन देता है। इस व्यानप्राणकी शक्ति बडी दुर्धर्ष है। इसके ऊपर सौर जगत्के प्राण और पार्थिव जगत्के अपान इन दोनोंका घर्षण या आक्रमण निरन्तर होता रहता है, किन्तु यह वामन मूर्ति विष्णु विराट्का प्रतीक है। यह किसी तरह पराभूत नहीं होता। यदि यह वामन या मध्य-प्राण हमारे केन्द्रमें न हो, तो सौर और पार्थिव प्राण-अपानका प्रचण्ड धक्का न जाने हमारा किस प्रकारका विखंडन कर डाले। उपनिषद्में कहा है—

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ॥

जिस केन्द्र या मध्यस्थ प्राणमें ऊर्ध्वगति प्राण और अधोगति अपान दोनोंकी ग्रंथि है, उसकी पारिभाषिक संज्ञा व्यान है। उसीको यहां सांकेतिक भाषामें इतर कहा गया है। प्राण अपान दोनों इसीके आश्रयसे संचालित होते हैं। और भी—

मध्ये वामनमासीनं सर्वे देवा उपासते।

यह केन्द्र या मध्य प्राण या वामन इतना सशक्त और बलिष्ठ है कि सृष्टिके सब देवता इसकी उपासना करते हैं। इसीके हृदग्रन्थि बन्धन या बलसे इतर सब देवोंके बल सन्तुलित होते हैं। यह वामनरूपी मध्यप्राण ही समस्त विश्वमें अपनी रश्मियोंसे फैलकर विराट् या वैष्णवरूप धारण करता है। विष्णुरूप महाप्राण ही हृदयस्थ वामनके रूपमें सब प्राणियोंके भीतर प्रतिष्ठित है। इसीके लिए कहा जाता है—

स हि वैष्णवो यद् वामनः। (शत. ५।२।५४)

हृदयस्थ वामनरूपी विष्णु किसी प्रकार अवमाननाके योग्य नहीं है। वही अविचाली सहज परिपूर्ण और स्वस्थ-भाव है। जो मानव इस केन्द्रस्थभावमें स्थिर रहता है, वही निष्ठावान् मानव है। जिसका केन्द्र विचाली है, कभी कुछ, कभी कुछ सोचता और आचरण करता है, वही भावुक-मानव है। केन्द्र स्थिर हुए बिना परिधि या महिमा मण्डल शुद्ध बन ही नहीं सकता। आत्मा, बुद्धि, मन और शरीर इन चारों विभूतियोंमें आत्मा और बुद्धिकी अनुगत स्थितिका नाम निष्ठा है और मन एवं शरीरकी अनुगत स्थितिका नाम भावुकता है। प्रायः निर्बल संकल्प-विकल्प वाले मनुष्य मन और शरीरानुगत रहते हुए अनेक

व्यापारोंमें प्रवृत्त होते हैं। जो बुद्धि मनको अपने वशमें कर लेती है, उसीको वैदिकभाषामें मनीषा कहते हैं। जिस व्यक्तिकी अटल बुद्धिमें पर्वतके समान ध्रुव या अटल निष्ठा होती है, उसे ही धिषणा कहते हैं। वैदिकभाषामें इसी अश्माखण्ड प्राणके कारण इसे 'धिषणा पार्वतेयी' कहा जाता है।

बारम्बार यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि भारतीय मानव धर्मभीरु होते हुए भी सर्वथा अभिभूत क्यों है? उसका ज्ञान और कर्म इस प्रकार कुण्ठित क्यों बना हुआ है? इस प्रश्नका मानवोचित समाधान यही है कि भारतीय मानव अत्यंत भावुक होगया है। उसने अपना प्राचीन निष्ठाभाव खो दिया है। वह सारे विश्वके कल्याणके लिए सौम्यभावसे आकुल हो जाता है, किन्तु आत्मकेन्द्रकी रक्षा नहीं करता। उसका अन्तःकरण सौम्य होते हुए भी भावुक होनेके कारण पिलपिला या पिलपिला रहता है। वह दृढ कर्म और विचारोंमें सक्षम नहीं बन पाता। उसमें धर्मभीरुता तो होती है, किन्तु आत्मसत्यरूपी धर्मात्मकता नहीं होती।

आत्मनिष्ठापर अध्यारूढ होना सच्ची श्रद्धा है। उसका भारतीय मानवमें अभाव हो गया है। अतएव उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्वका विकास नहीं हो पाता। वह जिस किसीके लिए भी अपनी आत्माका समर्पण तो करता है, किन्तु निष्ठापूर्वक ग्रहण कुछ भी नहीं करता। मनोगर्भिता बुद्धिसे प्रवृत्त होनेवाला मानव ही निष्ठावान् मानव है। ऐसे मानवका स्वयं केन्द्र विकसित होता है। केन्द्रबिन्दुका नाम ही मनु है। आत्मबीजका नाम ही मनु कहा जाता है। वह मनुतत्त्व जिस मानवमें विकसित नहीं है, उसमें श्रद्धाका होना भी व्यर्थ है। श्रद्धा तो मनुकी पत्नी है, अर्थात् श्रद्धा मनुके लिए अशिति या भोग्य है।

जिस समय आत्मकेन्द्र मनु तेजस्वी होता है, उस समय वह अपने ही आप्यायन या संवर्धन के लिए बाहरसे श्रद्धारूपी अशिति या भोग्य प्राप्त करता है। मनु श्रद्धाका भोग करके ही पूर्ण बनते हैं। मनु और श्रद्धाकी एक साथ परिपूर्ण अभिव्यक्ति ही सत्यका स्वरूप है, अर्थात् सर्वप्रथम मानवका आत्मकेन्द्र उद्बुद्ध होना चाहिए। उसमें मौर प्राण या इन्द्रात्मक ज्योतिका पूर्ण प्रकाश आना चाहिए, तभी वह सच्चा मनुपुत्र या मानव बनता है और इस प्रकार आत्मकेन्द्रके उद्बुद्ध होनेके बाद आत्मबीजके विकास के लिए वह सारे विश्वसे अपने लिए ग्राह्य अंश स्वीकार करता हुआ बढ़ता है। यही श्रद्धा द्वारा मनुका आप्यायन है। वैदिक भाषामें इसे ही यों भी कहा जाता है—

अशीतिभिर्महदुक्थमाप्यायते।

केन्द्र या मनु 'महदुक्थं' है। उस महदुक्थकी तृप्ति या आप्यायन श्रद्धारूपी अशितिसे होता है, जो उसे चारों ओरसे प्राप्त होती है। इस प्रकार एक ही बातको कई रीति से कहा गया है। महदुक्थ और अशिति, मनु और श्रद्धा इन दोनोंकी एक साथ अभिव्यक्तिका नाम ही सत्य प्रतिष्ठातत्त्व है—

सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्।

सत्य स्वयंप्रतिष्ठ होता है और सब कुछ सत्यका आधार पाकर प्रतिष्ठित बनता है। सत्य आग्नेय तत्त्व है और श्रद्धा ऋत या स्नेह या आपोमय पारमेष्ठ्य तत्त्व है। सत्य परायण बुद्धि और प्राण या इन्द्रतत्त्वको ग्रहण करती है। सूर्य की संज्ञा ही इन्द्र या रुद्र भी है। वेदकी दृष्टिसे अग्नि या शिव बड़े हैं और सोम अग्निका छोटा सखा है। सोमकी आहुति अग्निमें पड़ती है, जिससे अग्नि सौम्य रहता है और अमृतधर्मा बनता है। यही प्रक्रिया मानवमें भी निश्चित है। भावुकता सौम्यताका रूप है और निष्ठा आग्नेय प्राणात्मक बुद्धिका धर्म है। श्रद्धाका उद्गम मनमें और विश्वास का उद्गम बुद्धिमें होता है। विश्वास सौरतत्त्व और श्रद्धा आपोमय है। बुद्धिसे भी परे और उससे भी उच्चतर तत्त्वका नाम आत्मा है—

यो बुद्धेः परतस्तु सः।

श्रद्धा-समन्वित बुद्धि ही उस आत्मतत्त्व तक पहुँच सकती है।

अलौकिक परिपूर्ण मानव ही मनुष्य जातिका युग-युगोंमें आदर्श रहा है। गीतामें इसी मानवको लक्ष्य करके 'पुरुषोत्तम' कहा है। इसे ही अंग्रेजीमें सुपरमैन कहते हैं। प्रकृत-मानव और महामानवका जो अन्तर है, वही मैन और सुपरमैनका है। वेदव्यासने जो—

न हि मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किञ्चित्—

इस लोकोत्तर सत्यका उद्घोष किया है, वह उसी महामानव, अतिमानव या लोकोत्तर मानवके लिए है, न कि

सर्वात्मना दीन-हीन और अशक्त बने हुए निर्बल मानवके लिए, जो परिस्थितियोंके थपेडोंसे पराभूत होता हुआ इधर-उधर लक्ष्य-हीन कर्म करता रहता है। इस प्रकारका जो बापुरा मनुष्य है, वह तो शोकका विषय है। वस्तुत: मानवका उद्देश्य तो अपने उस स्वरूपकी प्राप्ति है जिसमें विश्वका वैभव या समृद्ध्यानन्द, और आत्माका सहज स्वाभाविक उत्कर्ष या आत्यानन्द दोनों एक साथ समन्वित हुए हों। जो मानव इस प्रकारकी स्थिति इसी जन्ममें यहीं रहते हुए प्राप्त करता है, वही सफल श्रेष्ठतम मानव है।

महाभारतके समस्त पात्रोंमें दो प्रकारके चरित स्पष्ट लक्षित होते हैं। एक वे हैं जो स्थिर धृति और दृढ निष्ठासे कभी च्युत नहीं होते और सदा दूसरोंका उद्‌बोधन करते हुए देखे जाते हैं। दूसरे वे हैं जो भावुक हैं और बार-बार उद्‌बोधन प्राप्त करनेपर भी जो उसे विस्मृत कर देते हैं और असत् कर्ममें प्रवृत्त होते हैं, या निष्ठासे विपरीत केवल भावुकतापूर्ण कर्म करते हैं। पहली कोटिके पात्रोंमें केवल चारकी गिनती है— कृष्ण, व्यास, भीष्म और विदुर। इनके अतिरिक्त युधिष्ठिर, अर्जुन आदि धर्मपथके पथिक भी अपनी भावुकताके कारण विषमभावको प्राप्त हो जाते हैं और कर्तव्य-अकर्तव्यके ज्ञानसे कुछ समयके लिए शून्य या विचलित हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि, कर्ण जैसे मानव तो एकदम असत् निष्ठा के लिए कर्म कर रहे थे। उनका तो अन्तमें विनाश निश्चित ही था।

महाभारत जैसी लोकोत्तर धर्मसंहिताके लक्ष्य दुर्योधन, कर्ण आदि पात्र नहीं हैं, क्योंकि वे अपने दुष्ट आग्रहको किसी भांति त्याग नहीं सकते थे। महाभारतके लिए समस्यारूपमें तो युधिष्ठिर और अर्जुन हैं, जो धर्मपथपर आरूढ होते हुए भी और धर्मपरायण-निष्ठा रखते हुए भी बार-बार कर्तव्यपथसे च्युत होते हैं और विषम निष्ठाको प्राप्त हो जाते हैं और अपने ध्येयको भूलकर कुछका कुछ करनेके लिए उतारू हो जाते हैं। कहां तो एक और अन्यायका प्रतीकार करनेके लिए अर्जुनका युद्धके लिए कृष्णको सारथि बनाकर रणभूमिमें आना, कहां दूसरी ओर क्षणभरमें ही युद्ध न करनेके लिए भारी अवसादको प्राप्त हो जाना। ऐसे ही युधिष्ठिर भी कई अवसरोंपर आत्महत्याके लिए या सब कुछ छोडकर वैराग्य धारण करनेके लिए तैयार हो जाते हैं।

जिस व्यक्तिकी निष्ठा ठीक है, जिसका आत्मकेन्द्र अविचलित है वह इस प्रकारकी धर्मभीरु बातें नहीं कहेगा, जैसी अर्जुन या युधिष्ठिरने कहीं, जो ऊपरसे देखनेमें तो तर्कसंगत और पंडिताऊ जान पडती हैं, किंतु जो आत्मनिष्ठ सत्य-धर्मकी दृष्टिसे नितान्त विरुद्ध हैं।

जिसे महामानव या अतिमानव या पुरुषोत्तम या लोकोत्तर मानव कहा गया है, जो व्यक्ति समाज, राष्ट्र और समस्त मानवजातिकी दृष्टिसे हमारा आदर्श है, उस श्रेष्ठ मानवका इस विश्वमें सच्चा स्वरूप क्या है? उसका निर्माण कैसे हुआ है? विराट् विश्वके कौन-कौनसे तत्त्व उसके निर्माणमें समाविष्ट हुए हैं? उसका केन्द्र और उसकी महिमा क्या है? विश्वात्मा षोडशी प्रजापति और केन्द्र प्रजापतिका क्या संबंध है?—

कहनेके लिए तो मानवका निर्माण छोटी-सी बात है, किंतु जैसा पहले कहा जा चुका है वह मानव सहस्रप्रजापतिकी प्रतिमा है। अतएव मानवके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान-विश्वस्वरूपकी मीमांसाके बिना अथवा सहस्रात्मा प्रजापति के स्वरूपपरिचयके बिना संभव नहीं है। सृष्टिके अंततक विश्वकी कोई प्रक्रिया ऐसी नहीं है जिसका प्रतिबिम्ब मानवमें न हो। संक्षेपमें इसका सूत्र यह है कि जो षोडशी प्रजापति है, वही मानवके केन्द्रमें बैठा हुआ मनुप्रजापति या आत्मबीज है। षोडशी प्रजापतिको ही त्रिपुरुष-पुरुष भी कहते हैं। अव्यय, अक्षर और क्षर ये ही सृष्टिके आधारभूत तीन पुरुष हैं, और चौथा इन तीनोंसे परे रहनेवाला परात्पर पुरुष कहलाता है, जो सर्वथा अव्यक्त और अमूर्त है, किंतु जिसके स्वाभाविकी ज्ञान, बल, क्रियासे यह सारा विश्व प्रवृत्त हो रहा है।

इस प्रकार त्रिपुरुष समन्वित परात्पर पुरुष ही षोडशी प्रजापतिका दूसरा नाम है। इन्हीं तीनोंकी विशेषताओंको और भी अनेक शब्दों द्वारा प्रकट किया जाता है, क्योंकि विश्वमें भी वस्तुतः वे तीन ही नामभावोंको प्राप्त हो रहे हैं। उदाहरणके लिए, अव्यय, अक्षर, क्षरका ही विकास मन, प्राण और भूत है। इन्हें ही जैसा पहले कहा गया है— प्रज्ञानात्मा, प्राणात्मा और भूतात्मा कहते हैं। इन्हीं तीनोंसे क्रमशः भावसृष्टि, गुणसृष्टि और विकारसृष्टिका जन्म होता है। इन तीनोंमेंसे प्रत्येककी पांच-पांच कलाएँ हैं अर्थात् अव्ययकी पांच कलाएँ, अक्षरकी पांच

कलाएँ और क्षरकी पांच कलाएँ और इनसे अतिरिक्त स्वयं परात्पर पुरुष- इस प्रकार षोडशी प्रजापति कहलाता है। कहा है—

पञ्चधा त्रीणि त्रीणि तेभ्यो
न ज्यायः परमन्यदस्ति।
यस्तद् वेद स वेद सर्वं
सर्वा दिशो बलिमस्मै हरन्ति॥

क्षर, अक्षर और अव्यय इन तीनोंमें शुद्ध आत्मा केवल अव्यय है। वह प्रकृतिसापेक्षतासे ऊपर है। प्रकृतिके दो रूप हैं— अव्यक्त और व्यक्त। व्यक्त रूप विश्व या क्षर है। प्रकृतिका अव्यक्तरूप अक्षर-पुरुष कहा जाता है। इसे ही पराप्रकृति कहते हैं। इसकी तुलनामें क्षर सृष्टि अपरा प्रकृति है। जो क्षर सृष्टि है वही भौतिक जगत् है। भूत प्रज्ञाधारपर प्रतिष्ठित रहता है। प्राणके बिना भूतकी स्थिति हो ही नहीं सकती। प्राचीन और अर्वाचीन दोनों दृष्टियोंसे यही सत्य सिद्धांत है। प्रत्येक भूत या पिण्डात्मा अर्थ प्राण-रूप शक्तिका ही व्यक्त रूप है। भूत और प्राण इन दोनोंसे ऊपर इनके भीतर समाविष्ट अव्यय-पुरुष है, जो विश्वसाक्षी असंग और अव्यक्तरूप है।

वैदिक परिभाषाओंसे प्रायः परिचय न होनेके कारण इनके सान्निध्यमें बुद्धिको व्यामोह होने लगता है। किंतु जिस प्रकार विज्ञानकी परिभाषाएँ सुनिश्चित और सार्थक हैं, इसी प्रकार वैदिक सृष्टिविज्ञानने भी अपने अभिधेय अर्थका प्रकाश करनेके लिए सुनिश्चित परिभाषाशास्त्रका निर्माण किया था। उन पारिभाषिक शब्दोंके द्वारा ही मंत्रोंमें, ब्राह्मणोंमें और उपनिषदोंमें सृष्टिसंबंधी नाना तत्त्वोंको स्पष्ट किया गया है। दुर्भाग्यसे उस परम्परासे हम दूर हटते चले गये और ब्राह्मणग्रंथोंका पठन-पाठन भी केवल यज्ञीय कर्मकांडोंतक सीमित रह गया। वैसे तो ऋषियोंकी दृष्टिसे उन्होंने ब्राह्मणग्रंथोंमें प्रायः इन अर्थोंको आद्यन्त भर दिया है, किंतु वे स्रोतग्रंथ भी आज दुरूह बने हुए हैं।

प्रजापतिको 'चतुष्पात्' कहा गया है। ओंकार उसका सर्वोत्तम गुह्य संकेत है। प्रणव भी चतुष्पात् है और प्रजापतिकी प्रतिमा मानव भी चतुष्पात् है। विश्व, विश्वकर्ता, विश्वसाक्षी, विश्वातीत इन चारोंकी ही संज्ञा क्षरात्मा, अक्षरात्मा, अव्ययात्मा और परात्पर है और इन्हें ही म, उ, अ एवं अर्धमात्रा-युक्त प्रणवके प्रतीकसे प्रकट किया जाता है। 'विश्व क्या है' यहाँसे प्रश्नसूत्रका वितान करते हुए समष्टि और व्यष्टिरूपमें पाञ्चभौतिक विश्वके मूलकारण की जिज्ञासा और उसका समाधान किया गया है। इसके उत्तरमें उपनिषदोंकी प्रसिद्ध अश्वत्थविद्याका निरूपण है जो वैदिक सृष्टिविद्याका ही दूसरा नाम है। इस प्रसंगमें कई प्राचीन परिभाषाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। जैसे- महावन-परात्पर, अश्वत्थरूपी महावृक्ष- अव्यय, इसे मायी महेश्वर भी कहते हैं।

इस अश्वत्थविद्यामें अव्ययको अमृत, अक्षरको ब्रह्म और क्षरको शुक्र भी कहा गया है। अव्यय अधिष्ठानकारक और भावसृष्टिका हेतु है, अक्षर निमित्तकारण और गुण-सृष्टिका हेतु है, एवं क्षर उपादान कारण तथा विकारसृष्टि-का हेतु है।

मनुतत्त्व

अश्वत्थविद्याके अतिरिक्त दूसरा महत्त्वपूर्ण विषय मनु-तत्त्वकी व्याख्या है, जिसके कारण मानव मानव कहलाता है। मनुतत्त्वको ही अग्नि, प्रजापति, इंद्र, प्राण और शाश्वत-ब्रह्म इन नामोंसे पुकारा जाता है, जैसा कि मनुके श्लोकमें प्रसिद्ध है (मनु. १२।१२३)। अध्यात्मसंस्थाके अंतर्गत चार प्रकारके मनस्तन्त्र हैं- श्वोवसीयस् मन, सत्त्वमन, सर्वेंद्रियमन और इंद्रियमन। ज्ञानशक्तिमय-तत्त्वको मन कहते हैं इन चारोंका संबंध चिदंशसे है। इसीके कारण ये प्रज्ञात्मक बनते हैं। इनमें सृष्टिकी जो मूलभूत कामना या काम है (कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत) वही सर्व जगत्के मूलमें स्थित अतएव पुरुषके मूलमें भी सर्वोपरि विराजमान हुआ विश्वात्मा मन या हृदयभावसे युक्त काममय पुरुष ही श्वोवसीयस् मन है। यही पुरुषमन मौलिक मनुतत्त्व है, जो सबका प्रज्ञास्ता और सर्वान्तर्यामी है। इसीकी ज्ञानमात्रा उत्तरोत्तर सुषुप्त्यधिष्ठाता सत्त्व-मूर्ति महन्मनमें, और वहाँसे इंद्रिय प्रवर्तक प्रज्ञानात्मरूप सर्वेन्द्रिय मनमें, और अंतमें नियत विषयग्राही इंद्रियोंके अनुगामी इंद्रियमनमें अवतीर्ण या अभिव्यक्त होती है।

एक-एक इन्द्रियका रूप-रस-घ्राण आदि नियत विषय इन्द्रियमनसे गृहीत होता है। इसीको 'पंचेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि' कहा जाता है। फिर पांचों इन्द्रियोंका

अनुकूल प्रतिकूल, वेदनात्मक जो व्यापार है, वह सब इंद्रियोंमें समान होनेसे सर्वेन्द्रियमनका विषय है। इसे अनिंद्रिय-मन भी कहा जाता है। जब चलते हुए किसी एक इन्द्रिय विषयका अनुभव नहीं होता, तब भी सर्वेन्द्रियमन अपना कार्य करता रहता है। भोगप्रसक्तिके बिना भी विषयोंका चिंतन यही मन करता है। सुषुप्ति दशामें अपने इन्द्रियप्राणोंके साथ मन जब आनन्दकी दशामें शांत होजाता है, जब सब इंद्रिय-व्यापार रुक जाते हैं, वह तीसरा सत्त्वगुणप्रधान सर्वैकघन महान् मन कहा जाता है। इस सत्त्वमनसे भी ऊपर चौथा अव्ययमन या सृष्टिका मौलिक चिद्‌बिंदु पुरुषमन है जिसे श्वोवसीयस् मन कहते हैं और जिसका संबंध परात्पर पुरुषकी सृष्ट्युन्मुखी कामनासे है। वही अणुसे अणु और महत्तोमयी यान है। केंद्रस्थभाव मन है। वही हृदय है। जब इसीसे अर्क या रश्मियाँ चारों ओर उपस्थित होती हैं, तो वही परिधि या महिमाके रूपमें मनु कहलाता है। यही मन और मनुका संबंध है यद्यपि अन्ततोगत्वा दोनों अभिन्न हैं।

स्वयम्भू स्वयं प्रतिष्ठित सृष्टिका मूलतत्त्व है। वह स्वयं विसर्गकी क्रमधारासे परे रहता हुआ कभी किसी प्रकार अणुभावमें परिणत नहीं होता। उसे वृत्तौजा या वर्तुलाकार कहा गया है। किन्तु उससे ही जब सृष्टिकी प्रवृत्ति आरम्भ होती है, तब त्रिवृत्‌भावका विकास हो जाता है। त्रिवृत्‌भावके ही नामान्तर मन, प्राण, वाक् हैं।

इनके और भी अनेक पर्याय वैदिकसाहित्यमें आते हैं। त्रिवृत् या त्रिक्के उत्पन्न होते ही स्वयंभूका एक केन्द्र तीन केन्द्रोंमें परिणत होजाता है। इस त्रिकेन्द्रक सृष्टिका नाम ही अण्डसृष्टि है, जो कि ज्यामितिके परिमाणमें वृत्तायत आकृतिवाली अण्डाकृति होती है। यही वैदिकभाषामें त्रिनाभिचक्र है। स्वयंभूके बाद सृष्टि-क्रमधारामें पांच अण्डोंका जन्म होता है। उनमें पहला 'अस्त्यण्ड' है, जिसका संबंध परमेष्ठी या महान् आत्मासे है। स्वयंभूसे गर्भित परमेष्ठी त्रिवृत्‌भावके प्रथम जन्मके कारण अण्डाकार बनता है। स्वयंभूने सर्वप्रथम यह कल्पनाकी कि यह सृष्टि उत्पन्न हो—

तदभ्यसृजत् अस्तु इति।

इसी कारण यह यह पहला अण्ड 'अस्त्यण्ड' कहलाया। अपने गर्भमें रखनेवाला परमेष्ठीका आपोमण्डल अस्त्यण्ड ही ब्रह्माण्ड कहलाता है। इसके बाद सूर्यसे दूसरा 'हिरण्मयाण्ड' उत्पन्न होता है। जैसा कहा जा चुका है कि व्यक्तभावकी संज्ञा हिरण्य है, अतएव हिरण्मयाण्डका संबंध अस्ति या गर्भित अवस्थासे नहीं, वरन् उस अवस्थासे है जब कि गर्भ आगे चलकर जन्म ले लेता है, अथवा अव्यक्त व्यक्तभावमें आ जाता है। पहली स्थिति या अस्त्यण्डका संबंध अस्तिभाव से है। दूसरीका संबंध जायते या जन्मसे है। जन्मके अनन्तर तीसरा भाव वर्द्धते अर्थात् वृद्धिसे है, इसे ही 'पोषाण्ड' कहते हैं। जिसका संबंध भूपिण्ड या पृथ्वीसे है। पुष्ट होनेके अनन्तर परिपाककी अवस्था आती है जिसे विपरिणमते इस शब्दसे कहा जाता है, इसे 'यशोऽण्ड' कहते हैं। यह वस्तुका महिमाभाव है और इसका संबंध महिमा पृथ्वीसे है। महिमा ही यश है। इसके अनन्तर प्रत्येक वस्तु क्षीण होने लगती है। वह अपक्षीयते अवस्था चंद्रमाके विवर्त हैं और उसे 'रेतोऽण्ड' कहा गया है। इन पांच ब्रह्माण्डोंकी समष्टि ही विश्व है और विश्वरूपमय एक स्वयम्भूब्रह्म स्वयं विश्व-निर्माण करनेके कारण 'विश्वकर्मा' कहलाता है। महान् विश्वसे लेकर यच्चयावत् जितने भूत या उत्पन्न होनेवाले पदार्थ हैं, उन सबमें—

अस्ति, जायते, वर्द्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते-

ये पांच भावविकार अवश्य होते हैं। एक एक बीजमें प्रकृतिका यही नियम चरितार्थ हो रहा है। स्वयं बीज अस्त्यण्ड है। उसमेंसे अंकुरका फटना अर्थात् अव्यक्त विटपका व्यक्तभावमें आना हिरण्मयाण्ड है। भूपिण्डसे अपनी खुराक लेकर अंकुरका बढना उसका पोषाण्डरूप है। फिर उस अंकुरका अपने सम्पूर्ण महिमाभावको प्राप्त होकर पूरा वितान करना यह उस बीजका यशोऽण्ड रूप है। दिक्चक्रवालको व्याप्त करके जो महान् वटवृक्ष देखा जाता है, वह अतिसूक्ष्म उसी वटबीजकी महिमा या यश है। सर्वथा विपरिणाम या परिपाकके बाद प्रत्येक शरीरमें अपने ही जैसा उत्पन्न करनेकी एक शक्ति आती है, उसीका घनीभूत रूप रेत या बीज है। यही रेतोऽण्ड अवस्था है। इस अवस्थाको प्राप्त करते ही प्रत्येक शरीर क्षयोन्मुख होने लगता है।

[क्रमशः]

स्वाध्याय

[लेखक— श्री विश्वामित्र वर्मा, विषहर जंगल डभौरा (रीवा) म. प्र.]

★

१ अरब—संस्कृतमें 'अर्व' का अर्थ वह स्थान या देश जहां घोड़े उत्तम होते हों। अर्वकी शेख जाति ब्राह्मणोंके समान सर्वोच्च समझी जाती है। अरब पहले ब्राह्मणों-याजकोंका देश था। मनुस्मृति + बताती है कि शेख ब्राह्मणोंके योगसे उत्पन्न संकरजाति है। रामानुज सम्प्रदायके मूल प्रचारक यवनाचार्य × नवीं शताब्दीमें अरबसे आये थे। वह अरबके ब्राह्मण थे और एलेक्जेण्ड्रियाके विश्वविद्यालयमें शिक्षा पायी थी। हिब्रूके अरावा या अरोबासे बने अरब शब्दका अर्थ 'मैदान' है, लैण्ड ऑफ शिनार, 'श्रीनार' के नामसे पुराणोंमें वर्णित यही देश है, जो पर्शियन गल्फके ऊपर, सुमेरुके नामसे कहा गया है। प्राचीन कालमें श्रीनार • ही सुमेरु था।

२ 'असु' धातुसे 'असुर' शब्दका अर्थ 'प्राण' है, अतः असुरसे प्राणवान्, सामर्थ्यवान्, बलवान्का बोध होता है। वेदोंमें 'सुर' कहीं नहीं है। 'असुर' के प्रयोग इन्द्र, वरुण, अग्नि, मित्रके अर्थमें हुआ है—

अनायुधासो असुरा अदेवाः। ऋ ८।९६।९

३ 'काल' सूर्यका बोधक है। 'आद' सूर्यका नाम है, अदनमें सूर्यका मंदिर था, सोने चांदीकी ईंटोंसे बना था, हीरे मोतियोंसे सजावट थी। आदम, आदितस, आद, रब, सूर्यके बोधक हैं। वहांके लोग याज्ञिक थे, देशमें धुआं फैला रहता था। ❀

४ आदित्य और दैत्य पहले असुर कहलाते थे, पश्चात् उन्होंने 'देव' नाम धारण किया, और 'असुर' घृणा, तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा जाने लगा। असुरोंने शाकद्वीप आबाद किया, 'इस्तखर' प्रह्लादकी राजधानी हुई, फिर चलकर वे श्रीनार या सुमेरमें आये, तबसे यह असुर प्रदेश कहलाने लगा। इसका काल ई. पू. ६५०-६४० है। उनका फैलाव निमरी (आधुनिक कुर्दिस्तान) तक हुआ। आधुनिक अजर बैजान, प्राचीन आर्यवीर्यान है जहां जल प्रलयसे बचकर आर्योंके वंशके मूल पुरुषोंका जन्म हुआ। आधुनिक आर्मो-नियोंका प्रान्त है, जहां आर्य लोग स्वस्थ, फलाहारी, दीर्घायु, श्वेतवर्ण होते हैं, आर्योंके वंशज हैं। यहां अत्रिका आश्रम था, ईरानियोंका वैकुण्ठ कहते है, और यही सत्यलोक कहलाता था। 卐

ईरान-फारस— यह देश मूल नृवंशका मूल स्थान है। यहीं पर कश्यप सागर तटपर मरीचि पुत्र कश्यप और दक्ष पुत्रियों दिति, अदिति, दनु आदि पत्नियोंसे दैत्य आदित्य दानव आदि प्राचीन नृवंशके मूल पुरुष उत्पन्न हुए। दैत्य दानवोंसे आगे असुर आदि, आदित्योंसे देव, आर्य जातियोंका उद्गम हुआ और भूमण्डलमें उसका विस्तार हुआ। विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण, और फारसके इतिहासमें ये बातें मिलती हैं। इसी देशमें अपवर्त्त, नर्क, यमलोक, वैकुण्ठ, सत्यलोक, कल्पतरु, सुरपुर, इन्द्रलोक, नरवन, अत्रि

\+ व्रात्यस्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः। आवन्त्य वाट धानौ च पुष्पधः शेख एव च॥ मनुस्मृति.

× Asiatic Research Vol. X "yawenacharya...took his birth in a Brahmin family in Arabia, was educated in the university of Alexandria"

• Book of Genesis

❀ अरबका इतिहास. History of Arabia

卐 फारसका इतिहास

आश्रम, चन्द्रलोक, तपोभूमि आदि पुराणोक्त प्रसिद्ध स्थान हैं।

इक्ष्वाकुवंशी युवनाश्वके पिता आर्द्रका बसाया हुआ आर्द्रपुर और आर्द्र सागर (Adrianople और Adriatic Sea) है। इनके पुत्र युवनाश्वके नामपर युवन सागर (Ionian sea) है। शंकर जोटा प्रदेश भी यहीं है। शंकरको हम जटाधारी कहते हैं वह बालोंकी जटा नहीं है। ईरानका जाटा प्रदेश यहांके 'शंकर' प्रदेशमें है। जाट और जिप्सी जाति इसी प्रदेशके हैं। ईरानका मेदिया प्रदेश प्राचीन मद्र देश था। कनिंघमके इतिहास, भाग २ में ये बातें मिलती हैं।

कृष्णका साम्राज्य ईरानमें था। इसीसे भारतको त्याग कर उन्होंने ईरानकी यात्रा की थी। भारतीय राजवंशोंमें कृष्णका पता नहीं चलता। पुराणोंमें वर्णित वृष्णिके वंशमें श्रीकृष्ण नहीं है, केवल कंसके संबंधीके रूपमें वसुदेव और कृष्णका परिचय मिलता है। ऋग्वेदके तीन मंत्रोंसे कृष्ण और इन्द्रके विग्रहका स्पष्ट उल्लेख है, भागवतमें भी इसकी चर्चा है। कृष्णने पारिजात हरणके लिए सुरपुर पर धावा किया, इन्द्रने जो जलका स्वामी था, कृष्णको साथियों सहित जलसंकटमें डाल दिया, जिससे कृष्णने गोवर्धन धारण करके उद्धार किया। निस्सन्देह यह घटना सिन्धु नदीके प्रवाहसे संबंधित है। इन्द्रने सिन्धु नदी पार करके पंचनद प्रदेश पर अधिकार कर लिया था।

इन बातोंसे स्पष्ट होता है कि कृष्णका निवास सुरपुरके निकट कहीं ईरानमें था। कृष्णने अर्जुनसे मिलकर खाण्डव वन (ईरानका नन्दनवन) दाह किया। इसीमें नागवंशका नाश हुआ था, जिसका बदला तक्षक नाग (सांप नहीं) ने पाण्डवोंके निष्कासनके बाद परीक्षितका वध करके लिया। इसपर क्रुद्ध होकर जनमेजयने तक्षशिलामें नागयज्ञ किया अर्थात् नागोंको जिन्दा जलाया। परीक्षितके मारे जानेके बारह वर्ष बाद उनके पुत्र जनमेजयने 'सर्पसत्र' में सौरियाके धनञ्जय आदि तक्षक व सुतलके वासुकी वंशका नाश किया और जम्बूद्वीप व शाकद्वीप दोनों देशोंके चक्रवर्ती सम्राट् हुए। इस युद्धमें दधीचिके वंशज (जो अब पठान हैं) तथा इन्द्रने जनमेजयकी सहायता की, जिसका अग्नि पुराण अ. १३ में वर्णन है।

यह खाण्डववन या नन्दनवन 'कबीर' के नामसे ईरानमें लवण सागर और क्षीर सागरके मध्यप्रदेशमें है। नन्दनवनको आजकल पारदिया प्रान्त कहते हैं। यहांके निवासियोंकी जाति दाहे और देशका नाम दाहस्थान है। यह ईरानका 'ग्रेट डेजर्ट' है।

स्वर्गारोहणमें पाण्डवोंको साध्य, वसु, रुद्र, आदित्य आदि जातियां मिलीं थीं, जो ईरानमें रहती थीं। पाण्डवोंके मामा मद्रपति शल्य भी वहीं रहते थे। वे महारथी योद्धा थे। महाभारत संग्राममें वे कर्णके सारथी बने थे। परन्तु एक दूसरेकी निन्दा करनेसे परस्पर मित्र न बने, तब कर्णने मद्रोंके सम्बन्धमें निन्दा करते हुए कहा था– 'अरे, तुम लोग स्त्री पुरुषका विवेक नहीं रखते, सबसे सब मिलते जुलते हो। तुम सत्तूके साथ मछली खाते हो, गोमांस भक्षण करते, मधु पीते, निर्लज्ज हंसते नाचते हो, स्त्रियां नंगी मधु पीती नाचती हैं, मद्रोंके साथ अधोगति होती है, तू उसी देशका वासी मद्र नीच निर्बुद्धि मुझसे शत्रुकी बढाई करके मुझे डराना चाहता है। अरे, तुम्हारे यहां तो वर्णव्यवस्था भी नहीं है। वहां कभी ब्राह्मण क्षत्रिय हो जाता है, कभी वैश्य शूद्र, कभी फिर ब्राह्मण हो जाता है।"

ईरान शब्द 'आर्यान' का विकृत रूप है, मैक्समूलरका मत है कि ईरानियोंके पूर्वज भारतीय थे।

पाशुपत दर्शन वास्तवमें बौद्ध और हिन्दू धर्मोंका सम्मिश्रण है। इनके आचारोंमें जटा धारण करना, भस्म लगाना, नंगा रहना या चर्म खण्ड धारण करना और लिंग पूजना है। लिंग पूजनको उन्होंने बहुत महत्त्व दिया। भारतमें ईसाकी चौथी शताब्दीमें लिंगपूजनका बहुत महत्त्व बढा था। वाकाटक राजाओंके संबंधी राजा भारशिव कहाते थे, वे अपने कन्धेपर लिंग लिये घूमा करते थे।

हुएन सांगने अपने यात्रामें कहीं लिंग पूजनका वर्णन नहीं किया। महादेवकी मूर्तिका उसने वर्णन किया है। काशीमें १०० फुट ऊंची तांबेकी महादेवकी मूर्ति उसने देखी थी। दक्षिणमें बडी बडी शिवमूर्तियां देखनेको मिलती हैं।

महमूद गजनवीके समय तक लिंग पूजा सर्वत्र प्रचलित होगई थी और उसके साथ 'शिव' नाम जुड गया था। सोमनाथमें लिंग पूजन ही होता था। मूर्तियोंके बनानेकी विधि अलबेरुनीने बृहत्संहिताके आधारपर लिखी है। मुसलमानोंके आक्रमणसे मूर्तिके स्थानपर शिवलिंगकी पूजा हो

गई, क्योंकि मुसलमान पाषाण मूर्तिको तोड़ डालते थे और धातुकी उठा ले जाते थे। इससे लिंग स्थापना सहज हुई। इस कारण वामाचारको भूलकर भी लोग शुद्ध शिवलिंग पूजने लगे और सभी बौद्ध जैन शैव वैष्णवोंमें यह पूजा फैल गई। छठवीं-सातवीं शताब्दीमें बौद्धोंने जो तान्त्रिक ग्रन्थ लिखे हैं, वे लिंग पूजाके समान बीभत्स हैं, इनमें नग्न स्त्री पूजन तथा मत्स्य मांसादि भरपूर सेवन है। वे दिनमें बुद्ध और रातको नग्न स्त्री की पूजा करते थे, इसी समय उन्होंने मंजु श्री कल्प आदि पुराणोंकी रचना की। ऐसा ही जैनोंने किया, बौद्ध तथा जैनोंके अनाचारकी प्रतिक्रिया रूप कापालिकोंका शैव पंथ निकला जिन्होंने तलवार, स्त्री और मद्यकी सहायतासे सबको अपने रंगमें रंग लिया।

वैष्णव धर्म— भक्तिसे अभिप्राय वैष्णव धर्मसे है। शठकोपाचार्यने जो उद्योग किया, उस पर फल आया ईसाकी तीसरी शताब्दीमें, जब मद्रासके द्रविड़ ब्राह्मण विष्णु स्वामीने वैष्णव सम्प्रदायकी स्थापना की। इसे पुष्ट किया रामानुजाचार्यने। इनका जन्म ई. सन् १०१७ में श्रीरंगके पुजारी वंशमें हुआ। वे संस्कृतके प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य रचा और विशिष्टाद्वैत मत चलाया। उस समय कुलोत्तुंग नामक चोल राजा रंगमकी गद्दी पर था, उसे रामानुजका यह उद्योग अच्छा नहीं लगा। उसके भयसे रामानुजको १०८०-१०९० के बीच रंगम छोड़कर भागना पड़ा। कुलोत्तुंगने रामानुजके मित्र विरुत्तालवारकी आँखें फुड़वा दीं और इस सम्प्रदायका जो आदमी जहां मिला, उस पर अत्याचार किया। रामानुजने दस-बारह वर्ष मद्रासमें रहकर वहांके राजा बिद्दिदेव (विष्ण वर्धन) को अपना अनुयायी बनाकर जैनों पर मनमाना अत्याचार किया, उनके सिर तेलकी घानीमें डालकर पीस दिये। ❀

रामानुजके पश्चात् माध्वाचार्यने वैष्णवोंकी एक शाखा और स्थापित की। इनका जन्म ११९७ में, मृत्यु १२७६ में हुई। इस समय जब कि उत्तर भारतमें मुसलमानोंका उदय था, लोग जबरदस्ती मुसलमान बनाये जा रहे थे, स्थान-स्थानपर मस्जिद और ईदगाह बन रहे थे, दक्षिणमें ये ब्राह्मण नये नये पंथ बनाते थे। उस समय राजनैतिक अंधाधुंधीके साथ इतनी ही धार्मिक अंधेर था। कोई छोटा मोटा जमींदार थोड़ी सेना एकत्र कर आसपासका इलाका लूटकर राजा बन जाता था, वैसे ही कोई विद्वान् ब्राह्मण अपने अनुकूल ब्रह्मसूत्रका भाष्य लिख एक नया सम्प्रदाय खड़ा कर लेता था। जनताके सुख दुःखसे न राजा और न धर्माधिकारीको कोई मतलब था।

वैष्णव धर्मकी तीसरी शाखाका प्रवर्तन निम्बार्कने बारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें किया। ये तेलुगु ब्राह्मण थे, उन्होंने वासुदेवकी पूजाको दूसरे रूपमें मोड़ा। विष्णु और लक्ष्मी अथवा कृष्ण-रुक्मिणीको एक ओर हटाकर राधा-कृष्णकी पूजाको महत्व दिया। राधा और गोपियोंको आगे लानेवाले ये प्रथम वैष्णव नेता थे। इनके बाद पन्द्रहवीं शताब्दीके अन्तमें सोलहवींके प्रारंभमें वल्लभाचार्य और चैतन्यने राधाकृष्णकी पूजाका और भी विकास किया। राधाकृष्णकी पूजामें वामतत्व इतना बढ़ा कि कृष्णकी अपेक्षा राधाकी पूजाको महत्व अधिक मिलने लगा। 'राधाकृष्णके रति और रासका अश्लील वाममार्गी वर्णन गीत-गोविन्दमें है।' कृष्ण और गोपियोंकी क्रीडाएं गुप्तकालमें उच्चवर्गमें प्रिय हो चली थीं, अब राधाको परकीयाके रूपमें खुल्लम खुला आगे लाकर उसीके आधार पर वामतत्वका ज्ञान स्थापित किया गया।

वेद वेदाङ्ग

ऋक्, यजु, साम, अथर्व, चार वेद हैं। ऋक् सबसे पुराना और महत्वपूर्ण है। वेदोंके अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रंथ हैं। उन्हें वेदांग कहते हैं। अब ये केवल ७० उपलब्ध हैं। शेष लुप्त हो गये हैं। ब्राह्मणोंके अन्तर्गत उपनिषदोंको माना है। परन्तु उनका विषय ब्राह्मणोंसे पृथक् है। उपनिषद् ११९४ हैं, जिनमें १२५ केवल अथर्वसे संबंधित हैं। कुल १५० उपनिषद् प्राचीन और महत्वपूर्ण हैं। इनमें भी १० प्रधान हैं। परन्तु वेद केवल संहिता भाग ही है। पहले तीन वेद प्रधान थे, अथर्वकी गणना बादमें हुई। ऐतरेय ब्राह्मण, ऐतरेय आरण्यक, बृहदारण्यक तथा शतपथमें तीन ही वेद मान्य हैं। छान्दोग्य अथर्वको इतिहास मानता है, साम और अथर्वके आरण्यक नहीं है। 'वेद वर्तमान रूपमें जनमेजयके कालमें व्यास द्वारा सम्पादित किये गये हैं,' (विष्णु पुराण, चतुर्थ खण्ड)। वेदोंके विभाग करके व्यासने चार शिष्योंको एक एक वेद दिया। पैलको ऋग्वेद, वैश-

❀ Ancient India P. 258-60

*

स्थापनको यजुर्वेद, जैमिनीको सामवेद, सुमन्तको अथर्ववेद। कालान्तरसे इन चार शिष्योंकी परम्परामें अनेक भेद हो गये, जिससे वेदोंकी अनेक शाखाएं हो गईं। वेद और ब्राह्मणोंके अतिरिक्त चार उपवेद, छः वेदांग और अनेक उपांग हैं। ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेदका धनुर्वेद, सामवेदका गन्धर्ववेद, और अथर्वका अर्थशास्त्र। ६ वेदांगोंमें शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, ज्योतिष और छन्द हैं। पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र ये चार उपांग हैं।

शिक्षासे उच्चारणकी शुद्ध रीति ज्ञात होती है, व्याकरणसे शब्दों और वाक्योंकी प्रयोग विधि जानी जाती है, निरुक्तसे वेदोंमें प्रयुक्त शब्दोंकी व्युत्पत्ति और अर्थका पारिभाषिक ज्ञान होता है, कल्पसे वेद कर्मोंके क्रमका ज्ञान मिलता है, कल्पकी तीन शाखाएं हैं— श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्म-सूत्र। ज्योतिषसे समयका समुचित ज्ञान होता है, छन्दको पिंगल कहते हैं। वेदोंके शब्द हजारों वर्षसे जैसेके वैसे चले आते हैं, उनमें एक मात्रा भी नहीं बदली गई, इनको स्थिर रखनेको अनेक युक्तियां की गई, वेदकी अन्तिम पाठ शुद्धि ईसा पूर्व छठवी शताब्दीमें हुई। पुराणोंके अनुसार ऋग्वेदकी १६, यजुर्वेदकी १०१, सामवेदकी १०० और अथर्ववेदकी ९ शाखाएं हैं। ऋग्वेद, अथर्व और शतपथ ब्राह्मण इतिहासकी दृष्टिसे बहुत महत्वपूर्ण हैं। ऋग्वेदमें १० मण्डल हैं, प्रत्येक मण्डलमें बहुतसे सूक्त हैं प्रत्येक सूक्तमें बहुतसी ऋचाएं हैं। ये सूक्त छन्दोंमें लिखे गये हैं। यजुर्वेदमें यज्ञ ज्ञान है, इसके कृष्ण शुक्ल दो विभाग हैं, ४० अध्याय और २००० छन्द हैं, कुछ मंत्र गद्य हैं, बहुतसा भाग ऋग्वेदका, कुछ अथर्वका है। अथर्ववेदमें २० काण्ड, ७३० सूक्त, ६०१५ छन्द हैं, जिनमें १२०० ऋचाएं ऋग्वेदकी हैं।

निरुक्तकार और उनके अनुयायी भारतीय वेदाचार्य वेदोंको अपौरुषेय कहते हैं तथा उन्हें दिव्य ज्ञानका स्रोत मानते हैं। 'वेदोंमें ऐसे पुरुषों स्थानों और नदी नगरोंका विवरण है जिनका समर्थन पुराणोंसे होता है। वेदोंमें ई. पू. ४००० वर्ष पूर्वतककी कथाएं हैं। पौराणिक वंशावली आनुपूर्वी नहीं है। प्रत्येक वेदमन्त्रका एक ऋषि है। इन ऋषियोंकी यदि सूची बनायी जाय और वह सूची उनके कालके अनुक्रमसे हो तो वेदनिर्माणकी एक नयी परिपाटी प्रकट हो जाती है। वैदिक ऋषियोंमें सबसे प्राचीन ध्रुव, पृथुवैन्य, चाक्षुष मनु, वेन, पुरुरवस्, ययाति आदि हैं और सबसे नये, अन्तिम युधिष्ठिरके समकालीन, खाण्ड व दाहसे बचे हुए जरितर, द्रोण तथा नारायण हैं। वेदकी व्याख्या ब्राह्मणग्रन्थों द्वारा करनी आरंभ की गई, जिसका प्रारंभ याज्ञवल्क्यने किया और तबसे ऋषियोंकी जाति ब्राह्मण जाति बन गई। पीछे यज्ञ कर्म के पुरोहित बननेसे ब्राह्मणोंका कार्य पुरोहितका हो गया। यज्ञ क्षत्रिय-लोग राजनैतिक दृष्टिसे करते थे, अतः ब्राह्मण और क्षत्रियोंका दो दल हो गया। (क्रमशः)

विरोध और प्रतिकूलताका स्थान

(लेखक— श्री माताजी, श्री अरविन्दाश्रम, पांडीचेरी- २)

यह जगत् मृत्युने बनाया है जिससे कि इसका अस्तित्व रह सके। क्या तुम मृत्युको समाप्त कर देना चाहते हो? तब जीवन भी समाप्त होजायगा। तुम मृत्युको समाप्त नहीं कर सकते, किंतु तुम इसे एक महत्तर जीवनमें रूपांतरित कर सकते हो।

यह जगत् क्रूरताने बनाया है जिससे यह प्रेम कर सके। क्या तुम क्रूरताको नष्ट कर दोगे? तब प्रेमी भी नष्ट हो जायगा। तुम क्रूरताको नष्ट नहीं कर सकते, किंतु तुम इसे इसके विरोधी तत्वमें अर्थात् एक प्रबल प्रेम और आनद-की अवस्थामें बदल अवश्य सकते हो।

यह जगत् अज्ञान और भ्रांतिने बनाया है जिससे कि वे ज्ञान प्राप्त कर सकें। क्या तुम अज्ञानका, भ्रांतिका नाश करोगे? तब ज्ञान भी नष्ट हो जायगा। तुम अज्ञान और भ्रांतिको नष्ट नहीं कर सकते, किंतु तुम इन्हें एक तर्कातीत अवस्थामें परिवर्तित अवश्य कर सकते हो।

यदि केवल जीवन ही होता, मृत्यु नहीं होती, तो अमरत्व भी नहीं हो सकता था। यदि प्रेम ही होता, क्रूरता न होती, तो आनंद केवल एक हलका और क्षणिक उल्लास ही होसकता। यदि तर्क ही होता,अज्ञान न होता, तो हमारी उच्चतम उपलब्धि एक ससीम तार्किकता और सांसारिक बुद्धिमत्तासे आगे न बढती।

मृत्यु रूपांतरित होकर जीवन बन जाती है, यह अमरत्व है, क्रूरता रूपांतरित होकर प्रेम बन जाती है, यही सबसे बडा आनंद है, अज्ञान परिवर्तित होकर वह प्रकाश बन जाता है जो ज्ञानसे परेकी वस्तु है।

—श्री अरविन्द

यह वही विचार है, दूसरे शब्दोंमें, विरोध और प्रतिकूलता विकासको प्रोत्साहन देते हैं। कारण, यह कहना कि क्रूरताके बिना प्रेम मंद होगा... हां, तो प्रेमके सिद्धांतका, जो कि अभिव्यक्त और अनभिव्यक्त सृष्टिसे परेकी वस्तु है, भावनाकी मंदतासे या क्रूरतासे जरा भी संबंध नहीं है। श्री अरविन्दका विचार यहां केवल यह प्रतीत होता है कि जड पदार्थको आकार देनेके लिये विरोधी वस्तुएं ही दृढतम और सफलतम साधन होती हैं, इससे वह अपनी अभिव्यक्तिको तीव्र बना सकता है।

अनुभवके रूपमें यह पूर्णतया सत्य है, इस अर्थमें कि सबसे पहले, जब व्यक्ति शाश्वत और सर्वोच्च प्रेमके संपर्कमें आता है उसे तत्काल ही ... कैसे कहा जाय, एक बोध, एक प्रकारका संवेदन हो जाता है .. यह किसी प्रकारका समझना नहीं होता बल्कि यह ठोस अनुभव होता है कि स्थूल चेतना कितनी भी आलोकित या सुसंघटित हो, उसकी तैयारी कितनी भी अच्छी क्यों न हो, वह 'उसे' अभिव्यक्त नहीं कर सकती, पहला आभास इस प्रकारकी असमर्थताका ही होता है। इसके बाद अनुभूति होती है, एक ऐसी अनुभूति जो उसके एक रूपको व्यक्त करती है, जिसे हम ठीक क्रूरता नहीं कह सकते, क्योंकि जिसको हम क्रूरताके नामसे जानते हैं वह यह नहीं होती; किंतु होता यह है कि परिस्थितियोंकी समग्रतामें एक पथ स्पंदन प्रकट होता है जिसमें प्रेमकी, जैसा कि वह यहां अभिव्यक्त हुआ है, तीव्र अस्वीकृति अवश्य होती है। हां, यही बात है, स्थूल जगत्की कोई वस्तु प्रेमके वर्तमान स्वरूपकी अभिव्यक्तिको अस्वीकार कर देती है। मैं सामान्य जगत्की नहीं, इस समयकी उच्चतम चेतनाकी बात कह रही हूं। यह एक अनुभूति है, मैं उस वस्तुके बारेमें कह रही हूं जो हो चुकी है। अतएव, चेतनाका जो भाग इस विरोधका स्पर्श पा चुका है वह प्रेमके मूल स्रोतकी ओर एक सीधी पुकार

भेजता है, इस प्रकारसे इतनी तीव्रता होती है जो कि अस्वीकृतिकी अनुभूतिके बिना इसमें आ ही नहीं सकती थी। अब सीमाएं टूट जाती हैं, एक बाढ सी आ जाती है, जो इससे पहले अभिव्यक्तिमें नहीं आ सकती थी और जो वस्तु पहले व्यक्त नहीं थी वह अब व्यक्त हो जाती है।

इस बातको सामने रखते हुए जीवन और मृत्युके बारेमें स्पष्टतया ही हमारा एक समान अनुभव है। मृत्यु एक प्रकारसे हम पर छाई रहती है अथवा उसकी संभावना और उपस्थिति सदा बनी रहती है, जैसा कि 'सावित्री' में कहा गया है।

पालनेसे लेकर इमशान भूमितक तुम्हारी यात्रामें तुम्हारे साथ एक विभीषिका अर्थात् मृत्युकी उपस्थिति लगी रहती है। इसके साथ ही कोषाणुओंमें 'सनातनताकी शक्ति' के लिये एकारकी तीव्रता भी रहती है जो उस अवस्थामें वहां न होती, यदि हर क्षणका यह डर भी उपस्थित न रहता। तब व्यक्तिको यह समझमें आता है, बडे प्रत्यक्ष रूपमें वह यह अनुभव करना आरंभ कर देता है कि ये सब वस्तुएं केवल अभिव्यक्तिको तीव्र बनानेके, उसे उन्नत और अधिकाधिक पूर्ण बनानेके साधन हैं। और यदि यह कहो कि ये साधन अपूर्ण हैं तो स्वयं अभिव्यक्ति भी तो अपूर्ण है। जैसे जैसे वह अपने आपको पूर्ण बनाती जायगी, जैसे जैसे वह नित्य- विकसनशील वस्तुको व्यक्त करनेमें अधिकाधिक शक्त बनती जायगी, ये अपूर्ण साधन पीछे छूटते जायंगे और इनके स्थानपर सूक्ष्मतर साधन आते जायंगे और तब जगत् इन क्रूर विरोधोंकी आवश्यकताके बिना विकसित होने लगेगा। ऐसा केवल इसलिये है कि जगत् अभी भी अपनी शैशवावस्थामें है और मानवचेतना भी अभी बिलकुल बाल्यावस्थामें है।

यह एक बडा ठोस अनुभव है।

अतएव, जब पृथ्वीको विकास साधित करनेके लिये मृत्युकी आवश्यकता नहीं रहेगी, तो मृत्यु फिर वहां रहेगी भी नहीं। जब पृथ्वीको विकसित होनेके लिये कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं होगी, कष्ट भी लुप्त हो जायगा। और जब पृथ्वीको प्रेम करनेके लिये घृणाकी आवश्यकता नहीं रहेगी, तो घृणाका भी अस्तित्व नहीं रहेगा।

सृष्टिको उसके तमसमेंसे निकालनेके लिये, उसे, अपनी अभिव्यक्तिकी ओर ले जानेके लिये यही सबसे अधिक द्रुत और सूक्ष्म साधन है।

सृष्टि-रचनाका एक विशेष पक्ष है जो शायद बडा आधुनिक है— यह अव्यवस्था और अस्तव्यस्ततामेंसे निकलनेकी आवश्यकता है। अस्तव्यस्तता पैदा होती है असमस्वरतासे, अस्तव्यस्तता या अव्यवस्था कई रूप धारण कर लेती है, यह संघर्षमें, व्यर्थके प्रयत्न एवं शक्तिके अपव्ययमें परिवर्तित हो सकती है। यह उस क्षेत्रपर निर्भर रहता है जिसमें तुम निवास करते हो, किंतु भौतिक जगत्में अर्थात् कर्मके क्षेत्रमें इसका अर्थ होता है कार्यकी जटिलता, शक्ति और सामग्रीका अपव्यय, समयका नाश, नासमझी, मिथ्याबोध, अव्यवस्था और अस्तव्यस्तता। इसीको एक समय वेदोंमें वक्रता कहा जाता था (मुझे इसके लिये उपयुक्त शब्द नहीं मिल रहा।) यह एक ऐसी वस्तु है जो मोड-तोड दी गयी है। जो सीधी लक्ष्यकी ओर जानेके स्थानपर एक बडे पेचीदे रास्तेको पकडती है। यह वस्तु उस विशुद्ध दिव्य कर्मकी समस्वरताकी पूर्णतया विरोधी है जो बहुत ही सीधा-सादा है। ··· ये बच्चोंकी सी बातें प्रतीत होती हैं। सर्वथा अनुपयोगी चक्कर काटनेकी जगह सीधा बिलकुल सीधा चलो। स्पष्टतया यह बात भी ऐसी ही है- अव्यवस्था एक विशुद्ध और दिव्य सरलताकी आवश्यकताको प्रदीप्त करनेका एक ढंग है।

शरीरकी बहुत अधिक यह इच्छा रहती है कि सब कुछ सरल, बहुत सरल हो जाय। और शरीरको जो कि एक प्रकारकी वैयक्तिक समष्टि है अपना रूपांतर करनेके लिये अपने आपको सहज सरल करनेकी आवश्यकता है, सहज और सरल। प्रकृतिकी ये सब जटिलताएं, जिन्हें अब हमने जानना और समझना शुरू किया है और जो एक छोटी वस्तुके लिये, हमारी एक छोटीसे छोटी क्रियाके लिये इतनी दुर्बोध बन जाती हैं। एक ऐसी गहन प्रणालीका परिणाम है जिसके बारेमें सोचना भी मुश्किल है। निश्चय ही मानव-विचारके लिये समस्त बातोंको पहलेसे देख लेना और संयुक्त करना है- अब विज्ञान इसकी खोज कर रहा है। और यह बडे स्पष्ट रूपमें देखा जा सकता है कि यदि क्रियाको दिव्य बनाना है, दूसरे शब्दोंमें यदि उसे अव्यवस्था और अस्तव्यस्ततासे बाहर निकालना है तो उसे सरल, बहुत सरल हो जाना चाहिये।

दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि प्रकृतिको, बल्कि अभिव्यक्तिके लिये प्रयत्न करती हुई प्रकृतिको मूक सरलताके दुबारा लानेके लिये ही एक अचिंत्य और असीम-प्रायः जटिलताको अपनाना पडा।

और तुम अब फिर उसी वस्तु पर आ जाते हो। जटिलताकी अधिकताके द्वारा ही सरलता संभव होती है। यह सरलता रिक्त नहीं बल्कि भरी पूरी होती है, यह एक ऐसी सरलता है जिसमें सब कुछ है, जब कि जटिलताके बिना वह एक रिक्तता होगी।

लोग इन खोजोंकी ओर अग्रसर हो रहे हैं, उदाहरणार्थ, शरीर-रचना-विज्ञानमें शल्य-चिकित्साकी खोजें हो रही हैं, जो अचिंत्य रूपमें जटिल हैं। यह तो मानों जड पदार्थके तत्वोंका खंड खंड कर देना हुआ। कितनी भयानक जटिलता है यह। और इन सबका लक्ष्य है एकत्वको व्यक्त करनेका प्रयत्न, उस सरलताको, जो कि दिव्य अवस्था है।

शायद यह कार्य शीघ्र ही होगा... किंतु प्रश्नका अंतमें यह रूप हो जाता है— एक समर्थ अभीप्सा, जो कि रूपांतर लानेवाली वस्तुको काफी तीव्र और प्रभावशाली रूपमें आकर्षित कर सके। जटिलताको सरलतामें रूपांतरित कर दो, क्रूरताको प्रेममें और इसी प्रकार अन्य सबको।

शिकायत करने और यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह एक दयनीय अवस्था है। कारण, यह ऐसा ही है। ऐसा क्यों है ? ... शायद जब यह ऐसा नहीं होगा, तुम्हें पता लग जायगा। यह बात ऐसी नहीं होगी।

तब यह विचार- 'यदि यह ऐसी न होती तो अच्छा था इत्यादि, इत्यादि', यह बात व्यावहारिक नहीं है। इससे कोई लाभ नहीं, यह व्यर्थ है।

व्यक्तिको शीघ्रतासे वह करना चाहिये जो आवश्यक है जिससे वह वही न बना रहे। बस इतना ही, यही करने योग्य है।

शरीरके लिये यह बात बडी मनोरंजक है। किंतु यह एक पहाड है, ऐसे अनुभवोंका पहाड है जो देखनेमें छोटे हैं, किंतु बहुविधतामें इनका भी अपना स्थान है।

× × ×

Statement about ownership of VEDIK DHARMA (Hindi)
(Rule 8 From IV), Newspapers (Central) Rule, 1956

1. Place of Publication	:	SWADHYAYA MANDAL P O. ' Swadhyaya Mandal (Pardi) ' Pardi [Dist : Surat]
2. Periodicity of Publication		MONTHLY 5 th of each Calendar Month
3 Printer's Name	:	VASANT SHRIPAD SATWALEKAR Swadhyaya Mandal, Bharat Mudranalaya,
Nationality	·	INDIAN
Address	:	P O ' Swadhyaya Mandal (Pardi) ' Pardi [Dist · Surat]
4. Publisher's Name	:	VASANT SHRIPAD SATWALEKAR Secretary, Swadhyaya Mandal
Nationality	:	INDIAN
Address	:	P O. ' Swadhyaya Mandal (Pardi) ' Pardi [Dist : Surat]
5. Editor's Name	:	Pt. SHRIPAD DAMODAR SATWALEKAR
Nationality	:	INDIAN
Address	.	P O ' Swadhyaya Mandal (Pardi) ' Pardi [Dist : Surat]
6. Name & Address of individuals who own the paper	:	Pt. SHRIPAD DAMODAR SATWALEKAR President– Swadhyaya Mandal.

I, Vasant Shripad Satwalekar, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

29 th February, 1964

Vasant S. Satwalekar
Signature of the Publisher

पावमानी वरदा वेदमाता

अपना मानव धर्म ' वेद ' है। आज तक हमारे पास चार वेद हैं, वे ये हैं—

१	ऋग्वेद	मंत्र संख्या	१०५५२
२	यजुर्वेद	,,	३९८८
३	सामवेद	,,	१८७५
४	अथर्ववेद	,,	५९७७
		कुल मंत्र संख्या	२२३९२

चारों वेदोंके इतने मंत्र हैं। यजुर्वेदमें कंडिकाओंकी संख्या दर्शायी होती है। हरएक कंडिकामें अनेक मंत्र होते हैं। इन कंडिकाओंके मंत्रोंकी संख्या ऊपर दी है।

यजुर्वेद यज्ञवेद है

यजुर्वेद यज्ञका वेद है। यजुर्वेदके अध्याय यज्ञके अनुसार विभक्त हैं, इसलिये यजुर्वेदको जैसाका वैसा रखना उचित है। जो यज्ञ करना चाहेंगे, वे यजुर्वेदके अनुसार यज्ञ प्रक्रिया करेंगे। परंतु अन्य तीनों वेदोंका एकत्रीकरण करना योग्य है। इन तीन वेदोंका एकीकरण इस रीतिसे हो सकता है--

१	ऋग्वेद	मंत्र	१०५५२
२	सामवेद	,,	१८७५
३	अथर्ववेद	,,	५९७७
			१८४०४ कुलमंत्र

इसमें सामवेदमें ऋग्वेदके ही मंत्र हैं। ' या ऋक् तत् साम ' ऐसा छांदोग्य उपनिषद्में कहा है। और आजके सामवेदमें केवल साठ मंत्रके करीब ऋग्वेदमें नहीं मिलते ऐसे हैं, बाकीके मंत्र ऋग्वेदके ही मंत्र हैं। इसलिये सामवेदके मंत्रोंकी पृथक् गणना करनेकी आवश्यकता नहीं है। अथर्ववेदमें भी करीब दो हजार मंत्र ऋग्वेदके ही मंत्र हैं, उनको हटाया जाय तो मंत्र संख्या ऐसी होती है--

कुल मंत्र संख्या	१८४०४
पुनरुक्त ,, ,,	२४०४
	१६००० (चारों वेदोंके मंत्र)

१६००० मंत्र संख्या श्रीमद्भागवतकी श्लोक संख्यासे कम है। यदि श्रीमद्भागवत एक पुस्तकके रूपमें छपकर बिक सकती है, तो संपूर्ण वेदमंत्रोंका एक ग्रंथ बन सकता है और वह सस्ता भी दिया जा सकता है।

आजके वेदोंका मूल्य

ऋग्वेद १०); यजुर्वेद २); सामवेद २); और अथर्ववेद ६) मिलकर २०) होते हैं। आज यह कमसे कम मूल्य है। २०) देकर हरएक घरमें वेद रखे जानेकी संभावना नहीं है। इतना मूल्य हरएक कुटुंब खर्च कर नहीं सकता। इसलिये चारों वेदोंके १६००० मन्त्रोंकी एक पुस्तक बनायी जाये, तो उसका मूल्य सस्ता होगा और वह हर एक घरमें पंहुंच सकेगी।

चार वेदोंके चार पुस्तक रखनेकी अपेक्षा, चारों वेदोंके, पुनरुक्त सूक्त छोडकर, शेष मंत्रोंका एक पुस्तक बनाया जायगा, तो पुस्तक छोटा होगा और मूल्यमें भी सस्ता होगा।

इसमें कोई मंत्र छोडा नहीं जायगा, पुनरुक्त सूक्त तथा पुनरुक्त मंत्र हटाये जायेंगे। इससे मंत्र संख्या १६००० के करीब होगी।

वेदोंकी व्यवस्था

आजके वेदोंकी मंत्र संग्रहकी व्यवस्था निम्न लिखित प्रकार है--

१ ऋग्वेद संहिता ' आर्षेय संहिता ' है, केवल नवम मंडक ' दैवत संहिता ' है।

२ यजुर्वेद- यज्ञ संहिता है। यज्ञ पद्धति दर्शानेवाला यह वेद है।

३ सामवेद- गायनका वेद है। और ऋग्वेदके ही मंत्रोंका यह सग्रह है। इसलिये इस सामवेदके पृथक् विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

४ अथर्ववेद में ११ से २० काण्डतक विषयवार कांड हैं। और प्रथमके १ से १० तकके काण्ड फुटकर हैं, विषयवार नहीं हैं।

देवताके अनुसार वेदमंत्र संग्रह

वेद मंत्रोंके संग्रह (१) आर्षेयमंत्र संग्रह, (२) दैवतमंत्र संग्रह, (३) छांदसमंत्र संग्रह और (४) विषयवारमंत्र संग्रह ऐसे चार प्रकारके हो सकते हैं। ऋग्वेद संहिता मुख्यतासे 'आर्षेय संहिता' है और नवम मंडल 'दैवत संहिता' है। यजुर्वेद संहिता 'याज्ञिक संहिता' है, सामवेद संहिता जिनसे सामगायन बने हैं ऐसे गानयोनि मन्त्रोंकी संहिता है और अथर्ववेद संहिता आधी विषयवार और आधी फुटकर है।

हम चारों वेदोंके मंत्रोंको किसी एक पद्धतिसे संग्रहित करेंगे तो वह संग्रह अध्ययन करनेके लिये, तथा विषय प्रतिपादनकी दृष्टिसे समझमें आनेके लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा।

उपास्य और उपासक

ऋषि 'उपासक' हैं और देवता 'उपास्य' है। उपासक उपास्योंके गुणोंका वर्णन करते हैं, उपास्योंके गुणोंको अपनाते हैं और अपनेमें वे गुण बढाकर देवत्वके गुणोंसे युक्त होना चाहते हैं। इसलिये 'उपास्य' श्रेष्ठ हैं। इस कारण 'दैवत संहिता' वेदमंत्रोंकी बनानेसे वह अध्ययनके लिये अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी, वेदका प्रतिपाद्य विषय भी इसीसे शीघ्र समझमें आवेगा।

विश्वराज्य

विश्वमें अग्नि, वायु, जल, विद्युत्, सूर्य, चन्द्र आदि अनेक देवतायें हैं, ये देवताएं इस समग्र विश्वका राज्य चला रहीं हैं। इनमें नियमसे चलनेका गुण है, नियम भंग ये कभी नहीं करते, आलस्य नहीं करते, रिश्वत खोरी इनमें नहीं है, समय पालन इनमें है, अपना अपना नियत कर्तव्य यथा योग्य रीतिसे ये कर रहे हैं, इस कारण इनसे विश्वका महाराज्य उत्तम रीतिसे चलाया जा रहा है। अतः ये हमारे मानवी राज्यके लिये आदर्शमंत्री हैं।

बाह्य देवताओंके अंश मानव शरीरमें आकर रह रहे हैं और मानव शरीरके अन्दरके सब कार्य यथा योग्य रीतिसे ये देवतांश कर रहे हैं। जितनी देवताएं विश्वमें हैं उतने देवतांश शरीरमें हैं।

शरीरमें जो देवतांश हैं उनके वर्णनको 'अध्यात्म' कहते हैं, विश्वमें जो देवता हैं उनको 'अधिदैवत' कहते हैं और राष्ट्रमें जो राज्यव्यवहार करनेवाले मंत्रीगण हैं उनको 'अधिभूत' कहते हैं। आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक इन तीन क्षेत्रोंमें वैदिक वर्णन देखे जाते हैं। यह स्पष्ट रीतिसे देखने और समझनेके लिये देवतावार मंत्रोंका संग्रह बडा उपयोगी सिद्ध होगा।

देवतावार किया हुआ मंत्र संग्रह विश्वराज्यके मंत्रिमंडलके अनुसार होगा और इससे वेदका गुह्य ज्ञान समझमें आनेके लिये बडी सहायता मिल सकेगी। अतः यह दैवत संहिताका मंत्र संग्रह नीचे दिये देवताओंके क्रमके अनुसार रहेगा—

विश्व--राज्य--व्यवस्था

१ तीन मूलतत्त्व— मंत्रसंख्या ५००

१ परब्रह्म— विश्वराज्यके संमाननीय राष्ट्रपति, जो स्वयं कुछ करते नहीं, पर जिनके रहने मात्रसे सब विश्वका कार्य चलता रहता है।

२ परमात्मा— विश्वराज्यके आदरणीय उपराष्ट्रपति। ये प्रकृति माताके साथ मिलकर विश्वनिर्मितिके कार्यमें अपनी शक्ति प्रदान करते हैं।

३ अदिति (प्रकृति-देवमाता)— यह देवोंको उत्पन्न करनेवाली माता है, अग्नि आदि देव इससे उत्पन्न होते हैं। जो विश्वराज्य चलाते हैं।

२ ध्येयदर्शन

१ पुरुष- १ 'विराट् पुरुष' (विश्वपुरुष, अधिदैवत),
२ राष्ट्र-पुरुष (मानव समाज रूपी पुरुष, अधिभूत)
३ व्यक्ति-पुरुष (अध्यात्म)

३ संसदध्यक्ष

१ सदसस्पति— विश्वराज्यकी विधानसभाके अध्यक्ष।
२ क्षेत्रपति— विश्वराज्यकी विधानसभाके उपाध्यक्ष।

देवमाता अदितिके द्वारा विश्वराज्यके मंत्रिमंडलमें भेजे गये मंत्रीगण

१ शिक्षा विभाग——— मंत्रसंख्या ३०००

१ जातवेदा अग्नि— शिक्षामंत्री (१)
२ ब्रह्मणस्पति— उप शिक्षामंत्री
३ बृहस्पति— सहायक उपशिक्षामंत्री

२ संरक्षण विभाग——— मंत्रसंख्या ४५००

४ इन्द्र— युद्धमंत्री, संरक्षणमंत्री (२)
५ उपेन्द्र (विष्णु)— उपसंरक्षणमंत्री (३)
६ रुद्र— सेना संचालन मंत्री (४)
७ मरुतः— सेनाके गण

३ आरोग्य विभाग—— मंत्रसंख्या ३०००

८ अश्विनौ— आरोग्यमंत्री (एक शस्त्र चिकित्सक और दूसरा औषधचिकित्सक) (५)
९ औषधि
१० सोम
११ अन्न
१२ गौ

४ पोषण विभाग—— मंत्रसंख्या १०००

१३ पूषा— पोषण मंत्री (६)
१४ सूर्य— शोधन मंत्री (७)
१५ सविता
१६ आदित्य

५ धन विभाग——— मंत्रसंख्या ५००

१७ भग— अर्थमंत्री (८)

६ उद्योग विभाग ——— १०००

१८ विश्वकर्मा- उद्योग मंत्री (९)
१९ वास्तोष्पति- गृहरचना मंत्री (१०)
२० त्वष्टा- शस्त्रास्त्र निर्माण मंत्री (११)
२१ ऋभु- लघु व्यवसाय मंत्री (१२)

७ सागर विभाग ——— १०००

२२ वरुण- नौका युद्ध मंत्री (१३)
२३ चन्द्रमा (१४)
२४ पर्जन्य (१५)
२५ नद्यः
२६ सरस्वती

८ जीवन विभाग——— १०००

२७ वायु- जीवन मंत्री (१६)

९ प्रकाश विभाग

२८ विद्युत्

१० स्त्री विभाग

२९ उषा- बालिका संरक्षण मंत्री

११ बाल विभाग

३० वेन- बाल रक्षण मंत्री (१७)

१२ गुप्त संरक्षण विभाग

३१ कः- गुप्त संरक्षण मंत्री (१८)

१३ वाहन विभाग

३२ अश्वः

१४ मातृभूमि

३३ पृथिवी

कुलमंत्र १६०००

इस प्रकार यह वेद विश्वराज्यकी व्यवस्था बता रहा है और इससे मानवराज्यकी सुव्यवस्था किस तरह होगी और उत्तम राज्य शासन किस तरह किया जा सकता है, इसका ज्ञान होगा और व्यक्तिके शरीरकी सुव्यवस्था किस प्रकार रह सकती है इसका भी बोध होगा।

जब संपूर्ण वेदमंत्रोंका अर्थ, मनन और स्पष्टीकरण तैयार होगा और उनका अच्छा ऊहापोह होगा, तब यह मन्त्रोंका वर्गीकरण पूर्ण रीतिसे तैयार होगा। तबतक इन देवताओंको देखकर जितना विचार किया जा सकता है उतना किया है। ऐसा समझना चाहिये।

सब वेदमंत्रोंका मिलकर एक ही पुस्तक इस तरह होगा और वह हरएक वैदिकधर्मी खरीद सके ऐसा उसका मूल्य सस्ता रहेगा।

सस्वर और स्वररहित वेदपाठ

आज कल जनताका यह विचार हुआ है कि वेद सस्वर ही छपने चाहिये, परंतु वास्तवमें ऐसा नहीं है। स्वररहित भी वेदपाठ होता है, इस विषयमें विद्वानोंकी सम्मतियां देखिये--

*

एकश्रुतिः दूरात्संबुद्धौ । अष्टा० १।२।३३
यज्ञकर्मण्यजपन्यूंखसामसु । १।२।३४

इन अष्टाध्यायीके सूत्रोंपर पतंजलिका महाभाष्य ऐसा है-

त एते तंत्रे सप्त स्वरा भवन्ति उदात्तः उदात्ततरः, अनुदात्तः अनुदात्ततरः, स्वरितः स्वरिते य उदात्तः सोऽन्येन विशिष्टः एकश्रुतिः सप्तमः ।

महाभाष्य १।१।२।३७

अर्थात् उदात्त व अनुदात्तोंसे पृथक् सप्तम स्वर रूप एकश्रुति नामक स्वर होता है और वह एक श्रुति--

संबोधने यज्ञक्रियायां मंत्र एकश्रुतिः स्यात् जपादीन् वर्जयित्वा ।

सिद्धान्तकौमुदी स्वरप्रक्रिया सूत्र ३६६२-६३

' संबोधन तथा यज्ञ क्रियामें मंत्र एक श्रुतिसे बोलने चाहिये, अर्थात् यज्ञोंमें मंत्र स्वरोंके बिना एक श्रुतिमें बोलने चाहिये ।

यज्ञमें एक श्रुतिसे अर्थात् उदात्त अनुदात्त आदि स्वरोंका उच्चारण न करते हुए मंत्र बोलने चाहिये । यह प्राचीन पद्धति है, अर्थात् यज्ञ कर्ममें वेदमंत्रोंके स्वरोंका उच्चारण नहीं करना चाहिये । यदि यह नियम वेद कालसे चला आया है । तो इस तरह स्वररहित वेद छापे जांय तो कोई हानि नहीं है । पाणिनी मुनि, महाभाष्यकार पतंजलि और सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजी दीक्षितके मत उपर दिये हैं । उनसे बढकर और कोई विद्वान् नहीं है कि जो इनके मतका खंडन करे और सर्वत्र वेदपाठ सस्वर ही होना चाहिये ऐसा कहे ।

तात्पर्य यह है कि यज्ञ कर्ममें वेदपाठ स्वररहित होता है और जप आदिमें स्वरसहित होता है । यदि ऐसा है तो स्वररहित वेद छापे तो कोई दोष नहीं होगा । परंतु मूल्य सस्ता हो सकेगा, यह उससे लाभ होगा । स्वर सहित वेद तो मिलते ही हैं, ये स्वर रहित होंगे और सस्ते होंगे । हर एक उनको ले सकेगा ।

स्वरोंका उपयोग

पदोंका ठीक अर्थ करनेके लिये स्वरोंकी उत्तम सहायता होती है, इसमें संदेह नहीं है । पाणिनी स्वर-प्रक्रिया देखनेसे स्पष्ट मालूम होता है कि स्वरोंका उपयोग पदोंके अर्थ निश्चित करनेमें होता है । स्वरका ज्ञान न रहा, तो पदोंका योग्य अर्थ ज्ञात नहीं हो सकता । यह सत्य है और बडे वेदार्थ करनेवाले विद्वानोंके लिये सस्वर वेद ग्रंथ अवश्य चाहिये यह भी सत्य है ।

पर यहां हम विचार कर रहे हैं वेदोंके पुस्तक सस्ते किस तरह हो सकते हैं । इसका उत्तर स्वर-रहित वेद छापे जायेंगे तो ही वे सस्ते हो सकते हैं और घर घर पहुंचाये जा सकते हैं ।

विद्वानोंको निश्चित अर्थ करनेके लिये स्वर-सहित वेद आज बाजारोंमें प्राप्त होते हैं, वैसे प्राप्त होते ही रहेंगे । सामान्य जनोंके घरोंमें वेद हों और वहां उनका पाठ हो इसलिये ये स्वर रहित वेद छापे जायें तो कोई हानि नहीं होगी, प्रत्युत लाभ ही होगा ।

वेदोंका मूल्य

चारों वेदोंके मंत्र २१००० हैं इनके छपने पर मूल्यका विचार ऐसा होगा ।

१ सस्वर मोटा टाईप पृष्ठ १२६६ मूल्य १५) रु.
२ सस्वर बारीक टाईप पृष्ठ १००० ,, १२) ,,
३ स्वररहित मोटा टाइप पृष्ठ ८०० ,, १०) ,,
४ स्वर रहित बारीक टाइप पृष्ठ ५०० ,, ७) ,,

जो पुस्तक स्वर सहित छापनेसे १२ से १५ रु. देना कठिन होगा, वही पुस्तक स्वरोंके बिना छापनेसे ७ से १० में दिया जा सकता है । प्रचारकी दृष्टिसे इसका विचार करनेसे मालूम होगा, कि वेद स्वर रहित भी छापे जा सकते हैं और उनका प्रचार भी अच्छा होगा ।

दैवत संहिता, नया संकलन

दैवत संहिता यह नया संकलन है इसमें कोई संदेह नहीं है । यह नया संकलन है इसलिये सदोष है ऐसा कोई कह नहीं सकता । क्योंकि प्राचीन समयसे वेदोंके ऐसे संकलन खास खास कार्योंके लिये होते आये ही हैं, देखिये-

१ ऋग्वेदकी (१) शाकल, (२) बाष्कल और (३) शांख्यायन संहितायें आज उपलब्ध हैं ।

२ यजुर्वेदकी (१) वाजसनेयी, (२) काण्व, (३) तैत्तिरीय, (४) काठक और (५) मैत्रायणी इत्यादि संहितायें मिलती हैं ।

३ सामवेदकी (१) कौथुमी, (२) राणायणी और (३) जैमिनीय ये संहितायें उपलब्ध हैं ।

४ अथर्ववेदकी (१) पिप्पलाद और (२) शौनक ये संहिताएं उपलब्ध हैं।

इनमें हमारी ' दैवत संहिता ' अध्ययनकी सुकरताके लिये बनी और उसमें विश्वराज्यका संचालनका कार्य सुव्यवस्थासे बताया, तो कोई हानि नहीं, प्रत्युत इससे अनेक काम होंगे--

दैवतसंहितासे लाभ

दैवतसंहितासे अनेक काम हैं वे ये हैं—

१ एक एक देवताके मंत्र एक स्थानपर आनेसे उनके पदोंके अर्थ निश्चित रीतिसे ज्ञात हो सकते हैं।

२ एक एक देवताके गुण कर्म निश्चित रीतिसे ज्ञात होनेमें सुविधा होगी।

३ वह देवता विश्वराज्यमें किस स्थानपर है और उसका वहां क्या कार्य है, यह निश्चित रीतिसे ज्ञात हो सकता है।

४ ' यद्देवा अकुर्वंस्तत्करवाणि ' (श. ब्रा.)— जो देवोंने किया वैसा कार्य मैं करूंगा, इस आदेशके पालनेमें सुभीता होगी।

५ वेदमंत्रोंका निश्चित अर्थ जाननेमें यह एक उत्तम साधन प्राप्त होगा।

इस प्रकार दैवत संहितासे अनेक काम हैं और वेदोंके अध्ययन करनेमें यह एक उत्तम साधन अध्ययन करनेवालोंको मिलेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

नामका विचार

इस ' दैवतसंहिता ' का नाम क्या रखा जाय, यह विचार करने योग्य बात है; अथर्ववेदमें एक मंत्र है—

स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।

अथर्व १९।७१।१

इस मंत्रमें ' वेद ' के लिए ' पावमानी वरदा वेदमाता ' ये पद आये हैं, इस मंत्रके अनुसार वेदके तीन नाम हो सकते हैं—

१ वेदमाता

२ वरदा वेदमाता

३ पावमानी वरदा वेदमाता

इनमेंसे हमने ' पावमानी वरदा वेदमाता ' यह नाम रखा है। इस विषयमें विचार करके पाठक हमें सूचित करें कि इस संहिताको कौनसा नाम दिया जावे, अथर्ववेदमें और एक मंत्र है—

यस्मात् कोशादुदभराम वेदं
तस्मिन्नन्तः अव दध्म एनम्,
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण
तेन मा देवास्तपसावतेह ॥

अथर्व १९।७२।१

' जिस कोशसे हमने वेदके ग्रंथ बाहर निकाले उसी कोशमें हम पुनः उनको रखते हैं। हमने ब्रह्मज्ञानके वीर्यसे इष्ट कर्म किया, उस तपसे देव यहां मेरा रक्षण करें। ' इस मंत्रमें—

४ वेद

५ ब्रह्म

ये दो नाम वेदके लिये आये हैं। इस तरह वेदके पांच नाम अथर्ववेदके दो मंत्रोंमें दिये हैं। इनमेंसे हमने ' पावमानी वरदा वेदमाता ' ' पवित्र करनेवाली वर देनेवाली वेदमाता ' इस अर्थका नाम पसंद किया है। क्योंकि वेद पवित्र करनेवाले हैं, वर देनेवाले हैं और माताके समान हित करनेवाले भी हैं। तो भी पाठक इन नामोंमें कौनसा नाम इस वेदग्रंथको दिया जाय, इस विषयमें अपने विचार हमें मालूम करा देवें।

छपाईके प्रकार

यहां नमूनेके लिये छपाईके ४ प्रकार दिये हैं। (१) बडा स्वर सहित टाईप है और एक पंक्तिमें एक मंत्र आ जाय ऐसा एक छापा है। (२) दूसरा नमूना पृष्ठ दो कालमोंमें छापा है, (३) तीसरा नमूना जगह न छोडकर दौडता (रनिंग) कंपोज है। (४) और चौथा स्वर रहित है। इनमें एकसे दूसरा, उससे तीसरा और उससे चौथा प्रकार सस्ता रहता है। पाठक विचार करें कि कौनसा प्रकार हम इस वेदकी छपाईके लिये लगावें। उद्देश्य वेदग्रंथ सस्ता करनेका है।

विचारके लिए इस विज्ञप्तिके साथ वेदोंकी छपाईके नमूने भी रखे हैं।

जिनके पास यह पत्र पहुंचे, वे इसपर मनन करके अपने विचार हमारे पास सविस्तर लिखकर भेजें। विरोधी लेखका भी यहां शान्तिसे विचार होगा—

मंत्री— स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जि. सूरत
(गुजरात राज्य)

[१]

॥ १ ॥ (ऋ० ५।७५।१-९) अवस्युरात्रेयः । पङ्क्तिः ।

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १ ॥
अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ २ ॥
आ नो रत्नानि बिभ्रता वश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ३ ॥
सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥
बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ५ ॥
आ वां नरा मनोयुजो ऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ६ ॥
अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ७ ॥

---

[२]

॥ २ ॥ (ऋ० १।१८२।१-८) जगती, ६,८ त्रिष्टुप् ।

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता
रथो वृषण्वान् मदता मनीषिणः ।
धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू
दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥ १ ॥
इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा
दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं
तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥ २ ॥
किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे
जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं
ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥ ३ ॥
जम्भयतमभितो रायतः शुनो
हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।
वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतं
उभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४ ॥
युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवं
आत्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः
सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥ ५ ॥
अवविद्धं तौग्र्यमप्स्वन्तः
अनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा
उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥ ६ ॥
कः स्विद् वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो
यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् ।
पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ
उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥ ७ ॥

[३]

॥ ३ ॥ (ऋ० १।१८०।१-१०) अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद् वां पर्यर्णांसि दीयत् । हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन् मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥ १ ॥ युवमत्यस्याव नक्षथो यद् विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः । स्वसा यद् वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥ २ ॥ युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः । अन्तर्यद् वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥ ३ ॥ युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रये अपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे । तद् वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥ ४ ॥ आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः । अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥ ५ ॥ नि यद् युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरंधिम् । प्रेषद् वेषद् वातो न सूरिः आ महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ३ ॥ वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् । अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥ ७ ॥ युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून् विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ । अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत् सहस्रैः ॥ ८ ॥ प्र यद् वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता । धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥ ९ ॥ तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् । अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

---

[४]

॥ ४ ॥ (ऋ. ८।५।१-३९) ब्रह्मातिथि काण्वः । पूर्वार्ध. । गायत्री; ३७ बृहती ।

दूरादिहेव यत् सत्यरुणप्सुरशिश्वितत् । वि भानुं विश्वधातनत् ॥ १ ॥ नृवद् दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा । सचेथे अश्विनोषसम् ॥ २ ॥ युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदृक्षत । वाचं दूतो यथोहिषे ॥ ३ ॥ पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू । स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥ ४ ॥ मंहिष्ठा वाजसातमेषयन्ता शुभस्पती । गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ५ ॥ ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम् । घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ॥ ६ ॥ आ नः स्तोममुप द्रवत् तूयं श्येनेभिराशुभिः । यातमश्वेभिरश्विना ॥ ७ ॥ येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना । त्रीँरक्तून् परिदीयथः ॥ ८ ॥ उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा । वि पथः सातये सितम् ॥ ९ ॥ आ नो गोमन्तमश्विना सुवीरं सुरथं रयिम् । वोळ्हमश्वावतीरिषः ॥ १० ॥ वावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी । पिबतं सोम्यं मधु ॥ ११ ॥ अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सप्रथः । छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ॥ १२ ॥ नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतम् । मो ष्व१न्याँ उपारतम् ॥ १३ ॥ अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः । मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥ १४ ॥ अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् । पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥ १५ ॥ पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः । वाघद्भिरश्विना गतम् ॥ १६ ॥ जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरंकृतः । युवां हवन्ते अश्विना ॥ १७ ॥ अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १८ ॥ यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्षणे । ततः पिबतमश्विना ॥ १९ ॥ तेन नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे । वहतं पीवरीरिषः ॥ २० ॥ उत नो दिव्या इष उत सिन्धूँरहर्विदा । अप द्वारेव वर्षथः ॥ २१ ॥ कदा वां तौग्र्यो विधत् समुद्रे जहितो नरा । यद् वां रथो विभिष्पतात् ॥ २१ ॥ युवं कण्वाय नासत्या ऽपिरिप्ताय हर्म्ये । शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥ २३ ॥

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आर्य धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३ सामवेद संहिता	३)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	१)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये **देवता-मंत्र-संग्रह** मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता- (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम-मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत संहिता- (द्वितीय भाग)

अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेवा। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता- (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि	,,	,,	२)	.२५
३ शुनःशेप	,,	,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	१)	.२५
५ काण्व	,,	,,	२).	.२५
६ सव्य	,,	,,	१)	.२५
७ नोधा	,,	,,	१)	.२५
८ पराशर	,,	,,	१)	.२५
९ गोतम	,,	,,	२)	.३७
१० कुत्स	,,	,,	२)	.३७
११ त्रित	,,	,,	१.५०	.३१
१२ संवनन	,,	,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	.५०	.१२
१४ नारायण	,,	,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति	,,	,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी	,,	,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि	,,	,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ	,,	,,	७)	१)
२० भरद्वाज	,,	,,	७)	१.५१

भारत-सोवियत संस्कृति समाजके महाराष्ट्र शाखाके वार्षिक परिषद्में म. म. पोतदार भाषण करते हुए।